वामन मल्हार जोशी

अस्तर पर मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य छपा है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ– रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं जिसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन–कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रांकित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

वामन मल्हार जोशी

लेखक

गोविंद मल्हार कुलकर्णी

अनुवादक

गोपाल शर्मा

साहित्य अकादेमी

Waman Malhar Joshi (वामन मल्हार जोशी) :
Hindi translation by Gopal Sharma of
G. M.Kulkarni's *Monograph in Marathi*
Sahitya Akademi, New Delhi (1992), Rs. 15

प्रथम संस्करण : 1992

प्रकाशक
साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवींद्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग
'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014
जीवनतारा, 23A/44X, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053
गुना, 304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेठ, मद्रास 600 018
ए.डी.ए. रंगमंदिर, 109 जे.सी. रोड, बैंगलोर 560 002

ISBN 81–7201–315–9

मुद्रक
फाईन प्रिंटस्
21, यशश्री पूर्ती, 30/1/1 एरंडवणे,
पुणे 411 004

मूल्य 15 रुपये

अनुक्रमणिका

1.
वामन मल्हार जोशी : व्यक्तित्व और कार्य

वामन मल्हार जोशी का जन्म कोंकण के 'तळेगाँव' में 22 जनवरी 1882 को हुआ। उनके पिता एक वरिष्ठ विद्वान ब्राह्मण और उत्तम ज्योतिषी थे। वे गोरेगाँव और आसपास के सात आठ गाँवों में पुरोहिती भी करते थे। उनका रहन-सहन सादा था। वामनराव के घर का वातावरण सुसंस्कृत और स्नेहपूर्ण था, संभवतः, इसीलिए उनके साहित्य में स्नेह की जो छवियाँ दिखाई देती हैं, उनके पारिवारिक वातावरण की देन ही होगी।

वामनराव के दो भाई और चार बहनें थी। एक सौतेला बड़ा भाई भी था। वह कोंकण में ही बस गया। सबसे बड़े सगे भाई महादेव, सर्वप्रथम, शिक्षा के लिए पुणे आए। उनके पश्चात दूसरे भाई नारायणराव और फिर कुछ दिनों बाद वे स्वयं पढ़ने के लिए पुणे आ गए। महादेव जोशी ने उन दिनों नवस्थापित न्यू इंग्लिश स्कूल से मेट्रिक पास की, बाद में डेक्कन कॉलेज से बी. ए. और एम्. ए. की डिग्रियाँ हासिल कीं। प्रत्येक परीक्षा में संस्कृत विषय में उच्च सफलता के फलस्वरूप उन्हें पुरस्कार और छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी। नारायणराव भी पुणे में ही शिक्षा प्राप्त कर बी. ए. हुए। वे आरंभ में रत्नागिरी में शिक्षक हो गए। परंतु बाद में सेवानिवृत्त होने तक वे सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी का काम देखते रहे।

वामनराव का यज्ञोपवीत हुआ और थोड़े समय बाद उनके पिता का निधन हो गया। पाँचवी कक्षा तक गोरेगाँव में ही पढ़ने के बाद आगे शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने बड़े भाई महादेव उर्फ अण्णा के पास पुणें आ गए। मेट्रिक कक्षा तक तो वे पुणें में ही लवाटे-पांगारकर की क्लास में पढ़े किन्तु इसी समय बड़े भाई अण्णा की नौकरी अहमदनगर के हाइस्कूल में लग गई इसलिए अपने भाई के पास अहमदनगर आ गए। मेट्रिक की परीक्षा में सारा समय अंग्रेजी निबंध में ही लगा देने के कारण अपने पहले प्रयत्न में वे असफल हो गए। पर अगले वर्ष यानी सन् 1900 में अच्छे अंक प्राप्त कर उन्होने मेट्रिक परीक्षा पास कर ली। अहमदनगर में ही वामनराव को डा. गुणे और सेनापति बापट (श्री. पा. मं) जैसे अच्छे सहपाठी मित्र मिले थे।

मेट्रिक पास कर उन्होने अपने भाई की तरह डेक्कन कॉलेज में प्रवेश लिया। उस समय डेक्कन कॉलेज "निसर्ग रमणीय कला कमनीय अतएव शिष्य स्पृहणीय" संस्थान

था। वामनराव कॉलेज के छात्रावास में रहते थे। उन्होने सन् 1904 ई. और सन् 1906 ई. में क्रमशः बी. ए. और एम. ए. की उपाधियाँ प्राप्त कर लीं। एम. ए. में तर्कशास्त्र और दर्शन उनके विषय थे। उनकी सारी शिक्षा छात्रवृत्ति के सहारे ही हुई। बी. ए. की परीक्षा में उन्हें अपने कॉलेज के प्रथम तीन विद्यार्थियों में स्थान मिला, इसलिए 'दक्षिणा फेलोशिप' प्राप्त हुई। बी. ए. में पढ़ते समय ही वामनराव को अंग्रेजी में श्रेष्ठ निबंध लिखने के उपलक्ष्य में 'हेवलॉक प्राइज' भी मिली।

कॉलेज में वामन की टेनिस खेलने में बड़ी दिलचस्पी थी। उनके खेल में कौशल की अपेक्षा उत्साह अधिक दिखाई देता था। एक अन्तर्महाविद्यालय मैच में उन्होंने फर्गुसन कॉलेज पर विजय भी पाई थी। इस प्रतियोगिता के विषय में प्रिंसिपल शार्प के पूछने पर उन्होंने निडर होकर कहा था - ''फर्गुसन कॉलेज के प्रोफेसरों और विद्यार्थियों में जो परस्पर आत्मीय भाव और मेलजोल है, वैसा यहाँ नहीं दिखाई देता। यहाँ के यूरोपियन प्रोफेसर कुछ भी हो, पराये ही हैं। उन्हें भारतीय विद्यार्थियों के प्रति स्नेह और आत्मीयता का अनुभव कैसे हो सकता है? अंग्रेजों के राज्य में हिन्दुस्थान को कोई फायदा नहीं हुआ। एक बार अराजकता बर्दाश्त की जा सकती है, परंतु ब्रिटिश शासन के अधीन यह शांति और सुव्यवस्था स्वीकार नहीं की जा सकती।'' उनकी इस स्पष्टोक्ति का प्रतिबिम्ब 'नलिनी' और 'सुशीलेचा देव' उपन्यासों में दिखाई दे जाता है।

डेक्कन कॉलेज में ही वामनराव में पढ़ने-लिखने का चाव उत्पन्न हो गया था। पाठ्यक्रम दरकिनार करके उन्होंने मनमाना साहित्य पढ़ा। कॉलेज की पत्रिका में अंग्रेजी और मराठी में बहुत से छोटे छोटे लेख लिखे। वामन मल्हार के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में डेक्कन कॉलेज की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

पुणे के तत्कालीन वातावरण और सहज स्वतंत्र चेतना ने वामनराव में राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा दिया। इस का परिणाम यह हुआ कि एम. ए. के पश्चात् आसानी से मिलनेवाली सरकारी नौकरी उन्होंने स्वीकार नहीं की। एक अंग्रेज प्राध्यापक ने वामनराव के लिए 'पोस्टल सुपरिटेन्डेट' के पद पर नियुक्ति की व्यवस्था कर दी, परंतु उन्होने उसे ठुकरा दिया। उनके मन में प्राध्यापक बनने की आकांक्षा थी, किन्तु इस इच्छा पूर्ति के लिए उन्हे लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी।

वामन मल्हार एम. ए. पास करते ही उसी वर्ष काँग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में जा पहुँचे। यह अधिवेशन अनेक कारणों से महत्त्वपूर्ण रहा। इसी अधिवेशन में महर्षि दादाभाई नौरोजी ने भारत की जनता को स्वतंत्रता का संदेश दिया। स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने और राष्ट्रीय शिक्षा संबंधी प्रस्ताव पास किए गए। अधिवेशन में वामन मल्हार का परिचय कोल्हापुर के समर्थ विद्यालय के संस्थापक प्रोफेसर अण्णा साहिब बीजापुरकर से हुआ। अण्णा साहिब राष्ट्रीय शिक्षा एवं 'स्वदेश, स्वधर्म तथा स्वभाषा' त्रिसूत्र के कट्टर समर्थक थे। प्रो. बीजापुरकर की राष्ट्रीय शिक्षा की कल्पना वामनराव को पसंद आई। 1907 में उन्होने समर्थ विद्यालय

को अपनी सेवाएं समर्पित कर दीं।

प्रो. बीजापुरकर 'विश्ववृत्त' नामक मासिक-पुस्तक प्रकाशित करते थे। 1908 में इसकी पूरी जिम्मेदारी वामनराव को सौंप दी गई। वे 'विश्ववृत्त' का सारा काम देखते थे, परंतु सम्पादक के रूप में प्रो. बीजापुरकर का ही नाम छापा जाता था। 'विश्ववृत्त' के एक अंक में पंडित श्री. दा. सातवलेकर का 'वैदिक प्रार्थनांची तेजस्विता' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ। इस लेख में व्यक्त विचारों के कारण 'विश्ववृत्त' कोल्हापुर-शासन का कोपभाजन हुआ। सम्पादक प्रो. बीजापुरकर, सहसम्पादक वामन मल्हार और प्रकाशक जोशीराव, इन तीनों को हत्या उकसाने और राजद्रोह करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। कोर्ट में मुकद्दमा दायर किया गया। इस मुकद्दमें में उन दिनों वेदोक्त प्रकरण की पृष्ठभूमि थी। यह बहस जोर पर थी कि प्रसिद्ध कोल्हापुर के शाहू महाराज वेदोक्त विधियों के अधिकारी हैं या पुराणोक्त विधियों के। कुछ ब्राह्मणों का मत था कि शाहू के राजघराने ने अपना वेदोक्त विधि का अधिकार खो दिया है। इस पृष्ठभूमि में पंडित सातवलेकर के लेख के एक अंश ने यह परिस्थिति उत्पन्न की थी। अंश इस प्रकार था - ''जो क्षत्रिय शत्रु की सेना और दुनियाँ से गुलामी का समूल नाश नहीं करता, उसके छत्रपतित्व और शमशेर बहादुर होने का राष्ट्र के लिए क्या लाभ?'' यह वाक्य कोल्हापुर महाराज को बहुत आपत्तिजनक प्रतीत हुआ और मुकद्दमा दायर करने का कारण बना।

तय किया गया कि 'विश्ववृत्त' में प्रकाशित लेख की जवाबदारी से बीजापुरकर इनकार कर दें और वामनराव उसे अपने ऊपर ले लें। ऐसा करने से दोनों के छूट जाने की संभावना थी। इस योजना के अनुसार वामनराव ने न्यायालय में यह बयान भी दिया कि ''सातवलेकर के लेख में परिवर्तन करते हुए मैंने ही उसे मुद्रित करवाया।'' परंतु मुकदमें का परिणाम उनके विरुद्ध ही गया। (1909) वामनराव को तीन वर्ष की कठोर श्रमसहित जेल की सज़ा मिली। शुरू में वे कुछ दिनों कोल्हापुर और पन्हाळा के जेल में रखे गए। फिर सिंध-हैदराबाद के जेल में स्थानान्तरित कर दिये गये। जनवरी 1909 से अक्टूबर 1911 तक उन्होंने इस कठोर कारावास के दिन बिताए।

कोल्हापुर कारावास के दौरान वहाँ के महाराजा ने वामनराव को 'दशकुमार चरित' का अनुवाद करने का आदेश भेजा। वामनराव ने यह काम आधाअधूरा कर भी लिया था, किन्तु आज वह उपलब्ध नहीं है। इस अनुवाद के निमित्त उन्होने रूचि की पुस्तकें मंगवा लीं और उन्हें पढ़ डाला।

सिंध-हैदराबाद के जेल में वामनराव को कठोर श्रम की सजा पानेवाले कैदी के नाते चक्की पीसना, चरखे पर सूत कातना, बूट के तलवे बनाना आदि कष्टदायक काम करने पड़े। पर वहाँ के अंग्रेज अधिकारी और एक निगरानी रखनेवाला मुसलमान कैदी मुकादम गोमल इस काम से कभी कभी काफी छूट भी दे देते थे। इन्हें सुशिक्षित, सज्जन कैदी पाकर, जेल के अधिकारियों की इनके प्रति अच्छी राय बन गई थी।

वे अपनी जिम्मेदारी पर उन्हे निजी पुस्तकें पढ़ने ला देते थे। इसी अवधि में वामनराव ने 'बाइबिल' और शेक्सपियर की कृतियाँ पढ़ीं।

वामनराव पर निगरानी रखनेवाला मुस्लिम मुकादम गोमल, कट्टर धर्माभिमानी था। गोमल और वामनराव के बीच धर्म और आचार के विषय में टूटी फूटी हिन्दी में बहस होती रहती थीं। इसमें गोमल कभी कभी चिढ़ भी जाता और उनसे रूठ भी जाता था। परंतु अंतःकरण से दयालु होनें के कारण, गोमल ने वामनराव की अनेक प्रकार से सहायता की और उनका जीवन यथासंभव बर्दाश्त करने लायक बनाया। इसी कारण वामनराव ने उसका संस्मरण बड़ी भावुकता से लिखा है।

वामनराव के जेल में रहने के दौरान ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। परंतु उनके भाइयों ने यह बात उनकी रिहाई तक मालूम नहीं होने दी। जेल से छूटने पर जब यह बताया गया तो मातृवियोग से उनके हृदय को बहुत आघात पहुँचा।

जेल से छूटने पर वामनराव सोच में पड़े कि 'आगे क्या किया जाए?' सरकार के रोष का जो परिणाम होना चाहिए वह हो चुका था। 'समर्थ विद्यालय' बंद पड़ा था। इसी दौरान, पुणे के आर्यभूषण छापाखाने में अंग्रेजी-मराठी कोश तैयार करने का काम चल रहा था। 1912 के अन्त तक वामनराव ने वहाँ सहायक के रूप में काम किया। इसके बाद सात-आठ महिने बेकारी का सामना करना पड़ा। इस अवधि में उन्होंने स्फुट लेखन के अलावा बाद में प्रकाशित एवं विख्यात हुई दो पुस्तकों की रचना की। उनके नाम हैं, 'साक्रेटिसाचे संवाद' और 'रागिणी'। फिर 1914 से 'रागिणी' का 'मासिक मनोरंजन' में धारावाहिक रूपसे प्रकाशन हुआ।

उस समय 'केसरी-मराठा' संस्था ने यह नीति अपनाई थी कि सरकार की नाराज़गी से जिसे नौकरी मिलना कठिन हो, उसे इस संस्था में आश्रय दिया जाए। तदनुसार न. चिं. केळकर ने वामन मल्हार को 'मराठा' में सहायक के पद पर रख लिया। सहसम्पादक की हैसियत से उन्होने दो वर्षो तक 'मराठा' में काम किया। इसी समय, अर्थात् 1915 में उन्होंने 'केसरी' में "पक्षभेद आणि पक्षद्वेष" शीर्षक विचार प्रवर्तक अपनी लेखमाला प्रकाशित की। 'केसरी-मराठा' में काम करते हुए वामनराव को लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व को पास से देखने समझने का अवसर मिला। सम्पादकों ने पुणे में आयोजित 'नरमदल' की परिषद में इन्हे संवाददाता के रूप में जाने को कहा। यह इन्हे पसंद नहीं आया, और वामनराव ने 'मराठा' से त्यागपत्र दे दिया।

'मराठा' छोड़ने पर वामनराव ने बम्बई में अ. ब. कोल्हटकर के अंग्रेजी दैनिक 'मेसेज' के सहसम्पादक का पद स्वीकार कर लिया। वहाँ लगभग डेढ़ वर्षतक काम किया। कोल्हटकर हिसाब के मामले में साफ नहीं थे, इसलिए वामनराव जैसे सीधे रास्ते चलनेवाले मनुष्य को अपना वेतन वसूल करने के लिए कोर्ट-कचहरी का सहारा लेना पड़ा। सन् 1917 में उन्होंने 'मेसेज' छोड़ दिया। इन्ही दिनों महर्षि धोंडो केशव कर्वे के महिला विद्यापीठ की स्थापना हुई। उसमें जून 1918 से वे मराठी और

मनोविज्ञान विषयों के प्राध्यापक हो गए। इस तरह लगभग बारह वर्ष तक वृत्ति संबंधी अस्थिरता के बाद, स्थायी रूप से टिकने का अवसर मिला।

इतनी अस्थिरता के बावजूद वामनराव ने महत्त्वपूर्ण लेखनकार्य किया, जिससे उन्हें कीर्ति मिली और वे प्रथम कोटि के साहित्यकार और गहन दार्शनिक के रूप में विख्यात हुए। इसी अवधि में लोकमान्य तिलक के 'गीतारहस्य' पर उनका "A Gist of Geeta-Rahasya" शीर्षक (गीतारहस्यसार) विवेचनात्मक निबंध, और बड़े भाई प्रो. म. म. जोशीद्वारा 'केसरी' में क्रमशः प्रकाशित 'आधुनिक शिक्षितांचा वेदान्त' शीर्षक लेखमाला पर 'जिज्ञासूच्या शंका' आलोचना प्रकाश में आई। उन्ही दिनों कथासंग्रह 'नवपुष्प करंडक', दो उपन्यासों 'आश्रमहरिणी' और 'रागिणी' तथा 'साक्रेटिसाचे संवाद' शीर्षक पुस्तक की रचना की गई।

'मेसेज' की सेवा के साथ ही, वामनराव की पत्रकारिता भी समाप्त हुई। समाचारपत्र जैसे व्यवसाय में, जहाँ तात्कालिकता को महत्त्व दिया जाता है, वामनराव का चित्त कैसे रम सकता था। "साक्रेटिसाचे संवाद" की प्रस्तावना में वे लिखते है - "छः सात वर्ष पहले अखबार में कार्य करते हुए यह अनुभव हुआ कि उसके लिए आवश्यक जो लेखन वाचन करना होता है, वह बहुधा तात्कालिक महत्त्व का होता है। इससे मेरे मन में असंतोष उत्पन्न होने लगा। बहुत दिनों तक उन्नतर और अधिक महत्त्व के लेखन-वाचन के लिए समय का अभाव रहा। शारीरिक अस्वस्थता और स्वभाव से आलसी होने के कारण, वह समय व्यर्थ ही बीत गया।" इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि पत्रकारिता छोड़ने के पीछे 'मराठा' और 'मेसेज' के कटु अनुभव नहीं बल्कि वाचन-लेखन के प्रति उनका आंतरिक लगाव ही था।

महिला विद्यापीठ हिंगणा का वातावरण वामनराव को रुचिकर प्रतीत हुआ। उनकी आरंभिक विद्यार्थिनियों में, कमलाबाई देशपांडे, गोदावरी केतकर, गंगूबाई पटवर्धन, मालतीबाई वेडेकर इत्यादि ने आगे चलकर बहुत ख्याति प्राप्त की। ये सभी छात्राएँ भी इस बात का गर्व अनुभव करती थीं कि 'रागिणी' के लेखक उनके अध्यापक हैं। हिंगणा के वातावरण में उनका मन खूब रम गया। वामन मल्हार शिक्षक के रूप में छात्राओं के बीच लोकप्रिय हो गये। इसका मुख्य कारण यह था कि वे उन्हे जानने समझने का प्रयत्न करते थे। वे विषय का आमूल विवेचन करते हुए इस पद्धति से पढ़ाते थे कि वह छात्राओं की समझ में आ जाए। उनके अध्यापन में साक्रटीज़-पद्धति के संवाद की प्रधानता थी। कक्षा में प्रश्न और उत्तर होते, प्रश्नों से प्रश्न निकलते। इससे छात्राओं में पाठ्य-विषय के प्रति अपने आप दिलचस्पी बढ़ने लगती। उनकी छात्राओं का कहना है कि, "वामनराव आराम से, बीचबीच में रुककर पढ़ाते थे। आँखों में स्निग्धता, आवाज़ में मृदुता, चेहरे पर वात्सल्य, और बुद्धि की परिपक्वता के कारण उनका अध्यापन घंटा कभी नीरस नहीं लगा।" वे कक्षा में मनोरंजक वातावरण बनाए रखते थे। उन्होंने लड़कियों को शायद ही कभी डाँटा-फटकारा हो। महिला-छात्रावास

में ही रहते थे। उनसे मेलजोल हो गया था। अध्यापन कार्य से अतिरिक्त समय में वे उनके कालयापन का भी ध्यान रखते थे। उनसे बागवानी का काम कराते थे। इस प्रकार के पाठ्येतर कार्यों में भी इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि विद्यार्थिनियों में किस तरह जिज्ञासु वृत्ति उत्तरोत्तर विकसित की जाए। छात्राओं को दण्ड देना वामनराव को बहुत अप्रिय लगता था। वे दंड देते और साथ ही माफ़ भी कर देते थे।

हिंगणा में कई वर्षों तक उन्होंने मुख्याध्यापक का काम भी किया। इस जिम्मेदारी का एक काम संस्था के नौकरों पर निगरानी रखना भी था। वामनराव का स्वभाव नरम था, इसलिए नौकर-चाकर हीलाहवाला और कामचोरी करते थे। परंतु वामनराव उनपर गुस्सा नहीं होते थे। वे कहते थे कि "अज्ञान और गरीबी के कारण नौकर चालाकी करते हैं। उन्हें कुछ कहने से क्या लाभ? वैसे देखा जाए तो बड़े बड़े सुशिक्षित और अमीर लोग क्या कम अविश्वसनीय हैं? सारी समाजरचना ही दोषपूर्ण है।" उन्हें संस्था के लिए दान एकत्र करते समय कईबार अपमानित भी होना पड़ता इससे सहकर्मी चिढ़ जाते। ऐसे में वामनराव उन्हें समझाते, "अरे, नाराज़ होने से कैसे चलेगा? प्रचारक को निंदा, अपमान जैसी बातों के प्रति उदासीन होना चाहिए और दुनिया के व्यवहार को विनोदबुद्धि से देखना चाहिए।" जनमानस में वामन मल्हार की छवि एक उपन्यासकार की थी। इस कारण उन्हें दान प्राप्त करने में आसानी होती थी। परंतु कभी कभी लोग संस्था को देखने के बाद ही दान देते थे। ऐसे अभ्यागतों के साथ वामनराव जरा चालाकी और दूरंदेशी, सूझ-बूझ से बात करते थे। इस विषय में उनका कहना था - "देखिए यह निजी संस्था है। इसे सुधारक, सनातनी सभी की सहानुभूति की आवश्यकता है। इसलिए सभी से बनाए रखना पड़ता है।"

हिंगणा आने से पूर्व वामन मल्हार को अस्थिरता और परेशानी के दौर से गुजरना पड़ा। पारिवारिक सुख का सर्वथा अभाव ही रहा। पहले कारावास और बाद में नौकरी में अस्थिरता के कारण वे अपना घर न बसा पाए। बेकारी के दिनों में तो उनकी पत्नी बालबच्चों के साथ, मायके में ही रहती थी। पैसों की कमी भी बराबर बनी रहती। मन भी अशान्त रहता। हिंगणा आने पर ही हालात बदले। मनपसंद काम, प्रकृति का सुंदर वातावरण, पड़ोसी शिक्षकों का सौहार्द प्राप्त होने के कारण वामनराव को सुखशांति मिली। वे स्वयं ही कहते थे कि "हिंगणा के आश्रम में बिताए 16 साल मेरे जीवन का सर्वाधिक सुख का समय रहा है।"

हिंगणा में आने के बाद पहले कुछ वर्षों तक तो उनका लेखन थम सा गया था, परंतु पहले लिखकर रखा हुआ उपन्यास 'नलिनी' और 'साक्रेटिसाचे संवाद' इसी अवधि में प्रकाशित हुए। इसके बाद उन्होंने कुछ निबंध और आलोचनाएँ लिखीं। 1927 में उनके इन स्फुट लेखों का संग्रह 'विचार विलास' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। 1927-28 में 'सुशीलेचा देव' शीर्षक उपन्यास 'रत्नाकर' मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने लगा। 'रागिणी' के रचनाकार का यह उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुआ।

जब 1930 में पुस्तकरूप में प्रकाशित हुआ तो देवास के शासक ने वामनराव को इस उपन्यास पर, उत्कृष्ट ग्रंथ के लिए नियत 'भोजराज पुरस्कार' प्रदान किया। 1930 में मडगाँव (गोवा) में आयोजित, अखिल भारतीय मराठी साहित्य संमेलन में वामनराव अध्यक्ष चुने गए। 1934 में उनका 'इंदू काळे व सरला भोळे' शीर्षक अंतिम उपन्यास प्रकाशित हुआ।

1934 में हिंगणा छोड़कर वामनराव जिमखाने में अपने भतीजे के पास रहने आ गए। वहाँ उनके पास वैचारिक आदान-प्रदान और साहित्यचर्चा के लिए अनेक तरुण मंडलियाँ आने लगी। यहाँ बा. सी. मर्ढेकर, प्रभाकर पाध्ये, पु. शि. रेगे इत्यादि ख्यातिप्राप्त लोग रहते थे। उनसे मार्क्सवाद, फ्रॉयड के मनोविज्ञान, नवमतवाद, कलानीतिवाद आदि विषयोंपर चर्चा और परिसंवाद होते थे। मर्ढेकर को वे बहुत बुद्धिमान मानते थे। इसी आदर भावना के कारण वामन मल्हार ने इनकी पुस्तक 'वाङमयीन महात्म्यता' (साहित्य का माहात्म्य) की प्रस्तावना लिखी थी। वामनराव 1937 में उज्जैन में आयोजित महाराष्ट्र मंडळ साहित्य संमेलन के अध्यक्ष बने।

अध्यापक और साहित्य सेवक के रूप में उनका जीवन आनंदमय था। परंतु पारिवारिक जीवन संतोषप्रद नहीं था। हिंगणा में आने के वाद 1919 में उनकी पत्नी का देहांत हो गया। इससे वामनराव को गहरा आघात पहुँचा। परंतु हिंगणा के शिक्षकों में एक बड़े कुटुंब की भावना थी, इसलिए वामनराव के चार बच्चे बेसहारा नहीं रहे। मई 1924 में वामनराव की वड़ी लड़की गंगू का विवाह तात्यासाहेब केलकर के चचेरे भाई और बाद में 'काव्यालोचन' के ग्रंथकार श्री. द. के. केलकर से हुआ। 1934 में जिमखाने में अपने भतीजे के पास आने के समय वे अनीमिया से पीड़ित थे। उन्हें अपने इलाज के लिए बम्बई जाना पड़ा। 1937 में उनकी दूसरी पुत्री शकुंतला का विवाह प्रसिद्ध समाज सुधारक सीताराम पंत देवधर के पुत्र विद्याधर पंत के साथ हुआ। शकुंतला के विवाह के बाद वामनराव अकेलापन महसूस करने लगे। इस बीच उनके ज्येष्ठ पुत्र बंडू को पागलपन का दौरा पड़ा और उसे यरवडा के अस्पताल में दाखिल करना पड़ा। यह आघात इतना जबरदस्त था कि वामनराव पुत्र को देखने ही नहीं जाते थे। 1940 में बंडू की मृत्यु अस्पताल में ही हुई। वामनराव अस्पताल के अधिकारी को अन्त्येष्टि संस्कार के लिए पैसे देकर घर लौट आए। इससे पता चलता है कि वामनराव जितने स्थितप्रज्ञ थे उतने ही भावुक भी थे।

1940 में वामनराव की 'विचार सौंदर्य' शीर्षक मौलिक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस समयतक उनका उपन्यास लेखन पूरी तरह थम चुका था। वामनराव स्वयं इसबात को समझ गए थे। प्रकाशक, उपन्यास की मांग करते तो वे मना कर देते। एक प्रकाशक ने प्रसिद्ध लेखक माडखोलकर की मध्यस्थता से उपन्यास की मांग की। उन्होंने माडखोलकर से कहा -"नए उपन्यास लिखने के लिए दिमाग में कोई नई उद्भावना तो उमड़नी चाहिए। इस समय अभिव्यक्त करने लायक मेरे पास नया कुछ नहीं है तो मैं लिखूं

क्या?" परंतु इस काल में उन्होंने कुछ स्फुट ललित निबंध लिखे। ये लेख अधिकतर आत्मपरक ही थे। ये लेख ही 'स्मृतिलहरी' शीर्षक के अंतर्गत संग्रहीत हैं।

1937 से 1942 तक वामनराव महाराष्ट्र साहित्य परिषद के कार्याध्यक्ष रहे। 1943 में वे अध्यक्ष भी हो गए। इसी वर्ष मई महिने में इतिहासकार गो. स. सरदेसाई की अध्यक्षता में 'इतिहास परिषद' आयोजित हुई थी और वामन मल्हार इसके स्वागताध्यक्ष थे। इस अवसर पर दिया गया उनका भाषण जीवन का आखिरी भाषण था।

जून 1941 में वामनराव महर्षि कर्वे के महिला कॉलेज में प्राचार्य पद पर नियुक्त हुए, अतएव वे फिर जिमखाने से हिंगणा में प्राचार्य के बंगले में रहने आ गए। उन्हें अनेक कठिन परिस्थितियों में प्राचार्यपद सम्हालना पड़ा। उनके पूर्व जो प्राचार्य थे उन्होंने त्यागपत्र दे दिया था। ऐसे हालात में जब वामन मल्हार ने एक प्राध्यापिका के काम के विषय में प्रतिकूल राय दी तो हंगामा खड़ा हो गया। परंतु वामन मल्हार ने अपनी कार्यवाही का ब्यौरा देते हुए एक पत्र संस्था को प्रेषित किया, साथही अपना त्यागपत्र भी भेज दिया। उनके स्पष्टवक्तव्य पर विचार कर संस्था नें वामनराव की कार्यवाही का सम्मानपूर्वक समर्थन किया। फिर भी उनका प्राचार्यपद का कार्यकाल संघर्षमय होता गया। अभी तक जो लोग स्नेही थे और सहयोग दिया करते थे अब शत्रु बनने लगे। जो वामनराव आज तक अजातशत्रु, सज्जन और सबको साथ लेकर काम करनेवाले व्यक्ति के रूप में सम्मानित थे वे अब दुर्जन, दुष्ट और स्वार्थी लोगों में गिने जाने लगे। वामनराव ने इस सब की कल्पना नहीं की थी। प्राचार्य के कार्यकाल के दो वर्षों के दौरान उन्हें सदा ही मानसिक व्यथा भोगनी पड़ी। वे बीमार पड़ गए। असह्य मानसिक तनाव, अल्प निद्रा और धूम्रपान के बढ़ते हुए व्यसन आदि का उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। अनीमिया और बवासीर की पुरानी बीमारीने फिर जोर पकड़ लिया।

1943 की जनवरी में 61वी वर्षगांठ पर महाराष्ट्र में जगह जगह वामनराव का अभिनंदन किया गया किंतु कॉलेज की ओर से सादी फूलमाला तक अर्पित नहीं की गई। इससे पता लग जाता है कि संस्था का वातावरण कितना प्रतिकूल और दूषित हो चुका था।

जुलाई 1943 में स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी वे विद्यापीठ की सिंडिकेट की बैठक में भाग लेने के लिए पुणे से बम्बई जाने को रवाना हुए। बीच यात्रा में ही बेहोश हो गए। सहयात्रियों ने उन्हें उनके भाई श्री. ना. म. जोशी के घर पहुँचाया। डाक्टर की सलाह पर उन्हें अस्पताल में भरती किया गया फिर भी उनकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। 9 जुलाई 1943 को बम्बई में उनका निधन हो गया। 'रागिणी' के उपन्यासकार के निधन का समाचार सुनते ही मराठी के पाठक शोकाकुल हो उठे। मृत्यु ने उनके 'घर मे तत्वज्ञानी' का हरण कर लिया था।

काल

वामन मल्हार का जीवन काल (1882-1943) एवं मर्ढेकर-पूर्व आधुनिक मराठी साहित्य का काल एक ही है। वामनराव का रचनाकाल 1915 से 1942-43 तक का है। इसी अवधि में तिलक युग का उत्कर्ष और अवसान (1915-1920) तथा गांधीयुग का आरंभ और उत्कर्ष (1920-42) हुआ। तिलक युग में बड़े पैमाने पर सामाजिक एवं राजनैतिक घटनाएँ घटती रहीं। शहरी मध्यमवर्ग शिक्षित हो गया था और उसकी संख्या निरंतर बढ़ रही थी। शिक्षा द्वारा नये विचार तथा नया ज्ञान लोगों तक पहुँच रहा था। यह ज्ञान लोगों के विचारों और कुछ सीमातक आचरण का भी एक हिस्सा बन गया था। रानडे और आगरकर जैसे महापुरुषों के विचारों ने समाज सुधार की प्रक्रिया जारी कर दी थी। इससे स्त्री संबंधित विविध प्रश्न लोगों के सामने आए। धोंडो केशव कर्वे जैसे लोगों ने स्त्री शिक्षा का आंदोलन शुरू कर दिया। अब नारी को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में देखने का दृष्टिकोण धीरे धीरे जड़ पकड़ने लगा। इसका परिणाम केवल महिलाओं तक ही सीमित न रहा, पूरे परिवार तथा समाज पर भी दिखाई दिया। लोग समझने लगे कि कुटुंब में नारी का स्थान नातेरिश्ते बताने तक ही सीमित नहीं है, उससे आगे भी है। कहा जा सकता है कि यह काल नई नारी की तस्वीर और पहचान के उभरने का काल था। वामन मल्हार ने अपने उपन्यासों में जिस नई नारी की सृष्टि की, उसकी पृष्ठभूमि में ये विचार ही थे।

नई शिक्षा के फलस्वरूप नई पीढ़ी को अनेक पश्चिमी विचारों का परिचय प्राप्त हुआ। उनके नए विचारों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय परम्परा के दार्शनिक सिध्दांतों को जाँचने-परखने और उन्हें यथावश्यक परिष्कार के पश्चात् ग्रहण करने की एक तीव्र लहर सी उठ आई। राजनैतिक आकांक्षा से प्रेरित भारतीयों को ऐसे विचारों की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। वे यह तो समझते थे कि ये नए विचार स्वागत योग्य हैं, परंतु उनकी यह भी इच्छा थी कि वे शतप्रतिशत आयातित न हों, भारतीय परंपरा के अनुकूल हों, अन्ततः वे भारतीय परंपरा में घुलमिल जाएँ। इसी से नए दर्शन के अन्वेषण की एक प्रक्रिया ही शुरू हो गई। एक ओर गीतारहस्य का उद्‌घाटन किया जा रहा था तो दूसरी ओर 'साक्रेटिस के संवाद' का मूल्यांकन किया जा रहा था। इसी कारण आचार्य जावडेकर ने इस काल को 'भारतीय सांस्कृतिक सिद्धांत मंथन का काल' कहा है।

यह काल व्यक्ति, कुटुंब, समाज एवं राष्ट्र जैसे अनेक स्तरों पर होनेवाले छोटे बड़े बौद्धिक वादविवादों से गुजर रहा था। सनातनी राष्ट्रवादी तथा सुधारक उदारता वादियों में तो जैसे खुलेआम जंग ही छिड़ गया था। सुशिक्षित युवकों के सामने यह प्रश्न था कि सुधार का रास्ता अपनाया जाए या राजनैतिक हलचल में शामिल हुआ जाए।

1920 के बाद भारतीय राजनैतिक मंच से तिलक युग अस्त हुआ और गांधी

युग का उदय हुआ। गांधीजी के हाथ में भारतीय राजनीति की बागडोर आते ही हिंदुस्थान के राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में एक बार फिर महत्त्वपूर्ण उथलपुथल मची। ऐसा लगता है कि इस काल में नवमानवतावाद का दर्शन प्रबल हो गया। महात्मा गांधी ने इस दर्शन को भारतीय आध्यात्मिक परंपरा से समन्वित कर दिया। इससे सनातनी राष्ट्रवादी और सुधारक उदारतावादी वर्गों के बीच मतभेदों को कम करने में मदद मिली। गांधीजी के उदय के साथ सनातनी राष्ट्रवादी वर्ग और उदारतावादी वर्ग के परस्पर विरोध जैसी अनेक मतभिन्नताएँ पीछे छूट गईं। जीवन के व्यापक संदर्भ में व्यक्ति की आत्मोन्नति एवं संसिद्धि को विशेष प्राधान्य मिला। व्यक्ति और समूह के परस्पर संबंधों को अलग नज़रिए से देखा जाने लगा।

1917 में रूस में क्रांति हुई। उसकी गूँज सारे विश्व में फैल गई। हिंदुस्तान में भी 1930 के आसपास बाल्शेविस्म आया। यहाँ के अनेक विचारक, साहित्यिक और राजनैतिक कार्यकर्ता विश्वकुटुंबवाद की ओर आकर्षित हुए। मार्क्स का समग्र अध्ययन करने के उद्देश्य से यहाँ अध्ययन मंडलों की स्थापना हुई, अध्यापन कक्षाएँ लगाई जाने लगी, इतना ही नहीं, इस नए दर्शन को आचरण के स्तर पर अपनाने के लिए कुछ समय तक यहाँ कम्यूनें भी अस्तित्व में आती रहीं।

इस कालावधि (1920-42) में एक ओर तो गांधीवादी और दूसरी ओर मार्क्सवादी सिद्धांतों का प्रसार हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि तिलक युग की अपेक्षा इस अवधि में एक नई दृष्टि प्राप्त हुई थी। तिलक युग में जीवन के विविध प्रश्नों की ओर समग्र दृष्टि से न देखकर उन्हें अलग अलग रूपों में परखा गया। गांधीयुग में गांधीवाद ने (तथा मार्क्सवाद ने भी) जीवन विषयक प्रश्नोंपर अलग अलग ध्यान न देकर मानव-जीवन की समग्रता के संदर्भ में उन पर विचार करना आरंभ किया। आगरकर-तिलक युग में मिल-स्पेन्सर का दर्शन पीछे रह गया था और मार्क्स-एन्जिल के सिद्धांत आगे आ गए थे। किंतु समाजवादी सिद्धांतों की अपेक्षा गांधीजी के सत्याग्रही क्रांति के विचारों से जनसामान्य अधिक प्रभावित हुआ। इसका कारण लोगों की यह धारणा थी कि "सत्याग्रह एक राष्ट्रीय क्रांति का विचार है। वस्तुतः वह सर्वांगीण क्रांति और सामाजिक संगठन अथवा समाजव्यवस्था का सिद्धांत भी है। वह भारतीय संस्कृति का परिपक्व फल है।" अहिंसा जिसका आधार-स्तंभ है, आत्मक्लेश में जो अपनी शक्ति खोजती है, सत्याग्रह को जिसने शस्त्र के रूप में अपनाया है और राजनैतिक स्वातंत्र्य से परे समाज की आत्मिक उन्नति को अपना ध्येय बताया है ऐसी गांधी प्रणीत 'रामराज्य' की कल्पना से केवल हिंदुस्तान में ही नहीं विदेशों में भी अनेक व्यक्ति आकर्षित हुए थे।

1915-42 की कालावधि में जहाँ एक ओर तो राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में ऐसी घटनाएँ जल्दी जल्दी हो रही थीं वहाँ दूसरी ओर विश्व के विचारकों के चिंतन में बदलाव लानेवाले कुछ शोध-सिद्धांत, समाजशास्त्र में साकार हो रहे थे। फ्रॉयड और युंग के मनोविश्लेषण संबंधी नए सिद्धांत, रसेल की नई नैतिकता इत्यादि के कारण

परंपरागत विचारप्रणाली में हलचल सी आ गई, उसकी आधारभूमि बदल गई। इस नवचिंतनधारा के प्रवाह में अपनी मान्यताओं, अपने सिद्धांतों का परीक्षण करने की प्रक्रिया शुरू हुई। मनुष्य और उसके जीवन के विषय में चिंतन को नई दिशा मिली।

इस प्रकार वामन मल्हार जिस अवधि में जोश से लिख रहे थे वह अनेक स्तरोंपर घटनाओं और विचारों से ओतप्रोत थी। इस समय की घटनाओं और फैलते हुए विचारप्रवाहों ने आधुनिक सुशिक्षित मन को अनेक तरह से उद्वेलित किया था, व्यक्ति के मन में एक तरह का असमंजस, एक संदेह और कर्तव्याकर्तव्य का विचार उत्पन्न कर दिया था। संक्षेप में कहा जाए तो आधुनिक शिक्षित व्यक्ति की मनस्थिति युद्धपूर्व अर्जुन के समान शंकाकुल हो गई थी। वामन मल्हार की जीवनदृष्टि में इन सभी का प्रतिबिम्ब स्पष्टरूप से उभर आता है ।

व्यक्तित्व

वस्तुतः आगे वर्णित 'तत्वचिंतन' और 'उपन्यास लेखन' अध्यायों में वामनराव के व्यक्तित्व से अपने आप यथोचित परिचय प्राप्त हो जाएगा। फिर भी उनका व्यक्तित्व चिंतनशील, सहृदय और संवेदनशील कैसे बना इसकी जानकारी यहीं प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा।

वामन मल्हार की शिक्षा पुणे के डेक्कन कॉलेज में संपन्न हुई। विद्यार्थी अवस्था में उनके कालेज में विद्यमान वातावरण ने उनके व्यक्तित्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कॉलेज के मुक्त वातावरण, यूरोपीय अध्यापकों के उदार और विचारशील दृष्टिकोण का असर विद्यार्थियों के मनों पर होता था। वामन मल्हार के मन पर भी हुआ। उनकी पढ़ने में रुचि बढ़ी। इसी के परिणाम स्वरूप उनका वैचारिक और साहित्यिक व्यक्तित्व विकसित और परिपोषित हुआ।

पुणे में 19वे शताब्द के अंत और 20वीं शताब्दी के आरंभ में व्याप्त वातावरण की निश्चित रूप से, उनके व्यक्तित्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

वहाँ सनातनी और सुधारक दोनों पक्षों का जोर था। दोनों पक्ष उभयार्थी व्यंगपूर्ण युक्तियों से और शास्त्र-प्रमाण उछाल उछाल कर इस विवाद-द्वंद्व में संलग्न थे। राजनैतिक हलचल ने अपूर्व जोर पकड़ लिया था। इन सब के परिणाम स्वरूप शुरू शुरू में वामनराव भी राष्ट्रवादी हो गए। इसीलिए, कुछ समय उन्होंने बीजापुर की राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम में भाग लिया। वेदोक्त प्रकरण में जेल भोगने के बाद वे 'केसरी-मराठा' संस्था में और कोल्हटकर की 'मेसेज' में रहे। इस पत्रकारिता ने भी उन्हें बहुत कुछ सिखाया। इसके बाद वे कर्वे की हिंगणास्थित स्त्रीशिक्षा संस्था में आकर स्थिर हुए। महिलाओं की संस्था में, तरुण सुशिक्षित लड़कियों से निकट संपर्क में आने पर उनके स्त्रीविषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन आता गया। वह अधिकाधिक उदार होता गया।

वामन मल्हार दर्शन के विद्यार्थी और अध्यापक रहे। इसलिए 'चिंतन' उनकी प्रकृति

का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। परंतु उनका चिंतन पारमार्थिक अथवा पारलौकिक विषय का नहीं था बल्कि वह मनुष्य और उसकी सृष्टि के संबंध में था। मानव जीवन की अपूर्णता से पूर्णता की ओर यात्रा ही उनकी विचार-सीमा थी। यह भी ध्यान रहे कि उनका व्यक्तित्व ज्ञान-पिपासु था, इस कारण वामन मल्हार किसी एक विचारप्रणाली से बंधे नहीं रहे। वे परखते रहते थे कि विशिष्ट संदर्भ में संगत विचार अन्य संदर्भ और भिन्न परिस्थिति में क्या उतनी ही यथार्थता से ग्राह्य हो सकता है? इस तरह हम देखते है कि उनका व्यक्तित्व 'क्वेस्ट फार नॉलेज' (ज्ञानपिपासा) से सम्पन्न था, किसी प्राचीन ज्ञानान्वेषी जिज्ञासु ऋषि के समान था। किसी एक विचार के प्रति आग्रह उनके स्वभाव में ही नहीं था। विचारों को अधिकसे अधिक शुद्ध रखने के यत्न में अनाग्रही प्रांजलता तथा किसी भी विचार के सभी आयामों के प्रति समान सहानुभूति से परखने की वृत्ति के कारण उनका प्रतिपादन दृढ़ और प्रभावकारी नहीं हो पाता था। सत्यान्वेषी रूचि के कारण उन्हे इस तरह के दृढ और जल्दबाजी के निष्कर्ष निकाल लेना मान्य नहीं था।

वामनराव के व्यक्तित्व में स्वतः प्रतिपादित, सत्य, सौजन्य और सौन्दर्य की भावत्रयी उद्भासित होती थी। वे इसी त्रयी की शोधात्मक साधनाद्वारा एक उच्च जीवन आदर्श निर्माण करने में निरंतर प्रवृत्त रहे। ललित लेखन में उनकी इस साधना का प्रतिबिंब स्पष्ट उभर आता है। गुरूकुल में उनकी भूमिका आचार्य के समान सत्यान्वेषी नीतिविवेचक की रही और इस भूमिका को समग्रलक्षी आकलन से समन्वित करना ही उनका महत्वपूर्ण प्रयास रहा। वे कहते थे, लोग इसे निष्ठा से याद रखें कि 'ज्ञान अमृत है, विष नही।'

वामन मल्हार अपनी सौंदर्य कल्पना में बाह्य छबि की अपेक्षा आन्तरिक सौंदर्य को प्राथमिकता प्रदान करते प्रतीत होते हैं।

वे आन्तरिक सौन्दर्य उसे मानते थे जिसमें से प्रबुद्ध स्तरीयता, रंजनात्मक वातावरण, प्रौढ़ विचारणा, परिपक्व समझ और सूक्ष्म निश्चल, मन प्रसन्न करनेवाला विनोद इत्यादि निरंतर झरता रहे। इसीलिए दार्शनिक और वैचारिक प्रकृति के वावजूद उनका व्यक्तित्व तर्ककर्कश, कठोर और कोरा अछूता नहीं बना। बल्कि वह मधुर था, काव्यशास्त्र विनोद से सम्पन्न था। नए विचारों से परिचित होने का कुतूहल उसमें कुलबुलाता रहता था। इन विशिष्टताओं के कारण ही उनकी ललित और गंभीर रचनाएँ मराठी के पाठक तब से अबतक रुचि से पढ़ते आ रहे हैं।

2.
दार्शनिक चिन्तन

महाराष्ट्र वा. म. जोशी को उनके लेखन के आरंभकाल से ही 'प्रकाण्ड सैद्धांतिक' 'चिन्तक' 'महाराष्ट्र के सुकरात' जैसी प्रशस्तियों से संवोधित करने लगा था। इतना ही नहीं यह भी अकसर कहा जाता है कि "वामन राव ने ही महाराष्ट्र को चिंतन करना सिखाया।" वैसे महाराष्ट्र में कई 'चिन्तक' हुए है। महाराष्ट्र को 'चिन्तकों' का प्रान्त भी कहा जाता है, परन्तु प्रेम और आदर से वामनराव को ही 'चिन्तक' उपाधि क्यों दी जाती है इसके रहस्य की खोजबीन किए बिना, चिन्तक और दार्शनिक के नाते उनके कार्य का मर्म और महत्व समझ में नहीं आ सकता।

भारत में अंग्रेजी राज्य आने पर महाराष्ट्र में जो राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्रांति हुई, पारंपारिक सिद्धान्तवादियों को जो चुनौतियाँ मिलीं उनसे वैचारिक क्षेत्रों में खासी खलबली मच गई। वामन मल्हार के पूर्व तथा उनके ही समय में पारमार्थिक भारतीय सिद्धान्त परंपरा और इहवादी (भौतिकवादी) पाश्चात्य परंपरा में संघर्ष उत्पन्न हो गया। प्रपंच बनाम परमार्थ इहवाद बनाम पारलौकिकितावाद, नव्य बनाम प्राचीन, व्यक्ति बनाम समाज, राजनीति बनाम समाजमूलकता, बुद्धि बनाम भावना, साध्य बनाम साधन क्रांति बनाम क्रमिक परिवर्तन, यत्नवाद बनाम भाग्यवाद, राष्ट्रवाद बनाम विश्वकुटुम्बवाद, नई नीति बनाम, पुरानी नीति, परम्परा बनाम नवीनता इस तरह के द्वंद्व उभर पड़े। इनसे निपटने के वास्ते कोई उपाय खोजने के लिए ऐसा प्रतीत होने लगा कि पारंपारिक विचारों के साथ साथ पाश्चात्य सिद्धान्तों में भी कुछ खोजबीन करना आवश्यक है। शंकराचार्य के साथ अरस्तू, सुकरात, हेगेल, कांट और मिल-स्पेन्सर के विचारों की मीमांसा की जाने लगी। आगे चलकर इस विचारमिश्रण की रसेल, फ्रॉयड, मार्क्स के सिद्धान्तों से संगति बैठाई गई।

इन सारे नये-पुराने विचारकों के चिंतन का अनुशीलन वामन मल्हार जिज्ञासुवृत्ति, आदरपूर्ण उत्सुकता और अनुष्ठान की भावना से करते थे। उसमें, अपनी दृष्टि से विशिष्ट देशकाल परिस्थिति में जो भी संगत और उपयुक्त मिलता, चाहे वह कितना ही क्रांतिकारी होता, उसे वे निर्मल मन और विवेकबुद्धि से स्वीकार कर लेते। इस विषय में उनकी मनोवृत्ति स्फटिक के समान स्वच्छ थी। उसमें हठ अथवा मताग्रह लेशमात्र नहीं होता था। वे यथासंभव विविध विचारों और कृतियों में संतुलन एवं समन्वय स्थापित करने

की कोशिश करते थे। ऐसे मामलों में यदि पुनर्विचार का अवसर मिलता तो वे तत्परता से सामने आ जाते। एक ओर वे जितने आदर्शवादी थे तो दूसरी ओर उतने ही यथार्थवादी और व्यक्तिवादी भी थे। आत्मान्वेषण की, आत्मज्ञान की, आत्मविकास की ध्वजा ऊंचाई पर ले जाकर फहराते रहने पर ही उनका ध्यान रहता था। विचारों को लेकर बेकार बहस करने की अपेक्षा विचारों में जीवन व्यवहार के पोषक तत्वों को वे तरतीब से ऊपर उठाते थे। वे बहुश्रुत थे किन्तु उनमें पुस्तकीय विद्वत्ता की अपेक्षा जीवनव्यवहार को सुकर, सुखद बनाने के प्रति अधिक झुकाव था। उनका साहित्य तो वस्तुतः विचारक्षेत्र में एक यात्रा ही समझिए। इस यात्रा में उन्हे जो जो दिखा, भाया, समझ में आया या प्रतीत हुआ, वह सब उन्होने सहृदयता एवं समीक्षा वृत्ति से, विचारों को आत्मसात् करने की, – अपनी और समाज की – समग्र सीमा को ध्यान में रखते हुए, नम्रतापूर्वक, जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत किया। इस ध्येय से उन्होने अपने पाठकों से प्रबुद्ध संवाद कायम रखने का प्रयत्न किया।

वामन मल्हार के लेखन में विचारों की शक्ति के साथ उनके सौन्दर्य का भी महत्व कम नहीं। 'विचार सौन्दर्य' 'विचार विलास' 'विचार विहार' जैसे वैचारिक स्फुटलेख संग्रहों के नाम यही दर्शाते हैं।

वामन मल्हार का समूचा झुकाव 'वसुधैव कुटुंबकम्' की ओर ही रहता था। फिर भी विचार विनिमयके लिए उनके समक्ष जो पाठक वर्ग था या उन्हें सुनने के लिए जो श्रोता वर्ग आता, वह मुख्यतः समकालीन, सुशिक्षित, तीव्र जिज्ञासा प्रवण, सुसंस्कृत, सहृदय महाराष्ट्रीय तरुण, स्त्री पुरुष वर्ग होता था। अपने लेखों और भाषणों में उन्होंने इस समुदाय के पारिवारिक और सामाजिक प्रश्नों की तात्विक स्तर पर विवेचना और आलोचना की है।

वामन मल्हार के सैद्धान्तिक विचार 'आधुनिक सुशिक्षितों के लिए वेदान्त' और उन्हें संबोधित 'गीता' हैं। 'किंकर्म किमकर्मेति' अर्थात् क्या कर्म है और क्या अकर्म, इस प्रसंग मे तत्कालीन विचारवान् शिक्षितों के समक्ष जो प्रश्न उपस्थित थे उनके समुचित हल सुझाने की दृष्टि एवं स्वकर्तव्य और 'स्वधर्म' के स्वरूप निश्चित करने की आकांक्षा से ही वामनराव का सारा लेखन और चिन्तन सक्रिय रहा। इस काम में भी उनकी भूमिका एक कठोर गुरु की न होकर एक स्नेही मित्र और सतर्क मार्गदर्शक की रही है। उनके मार्गदर्शन परक लेखन में विश्लेषण पर जितना जोर दिया गया है उतना ही संश्लेषण पर भी है। ऐसा नहीं था कि उन्हे विचारों के संप्रेषण की निश्चित दिशा मिल गई थी या सत्य का अन्तिम रहस्य उनकी पकड़ में आगया था। उनका ऐसा दावा भी नहीं था। वामनराव की ख्याति जितनी चिन्तक के रूप में है उतनी ही 'संशयात्मा' के रूप में भी है। उनकी वैचारिक पद्धति का महत्व, विशिष्ट प्रकार के विचार-निष्कर्षों के संदर्भ में नहीं है, वरन् अपनी विचार प्रणाली के स्वरूप को स्पष्ट करनेवाली प्रणाली का निदर्शन करने में है। वामन राव एक भी निश्चित विचार न देसके हों तो भी,

उन्हे इस बात का गर्व होता था कि मैं लोगों को यह बता पाया, विचार किस तरीके से करना चाहिए। यह उचित ही था।

किसी भी चिन्तक या दार्शनिक के विचारों की नींव उपलब्ध ज्ञान- विज्ञान और समकालीन जीवन-संदर्भ से पड़ती है। मैं कौन हूँ? मेरे जीवन का श्रेय किसमें है? मेरा और संसार का पारस्परिक संबंध क्या है? व्यक्ति की हैसियत से मेरा समाज से क्या रिश्ता है? इत्यादि प्रकार के जीवन संबंधी प्रश्न उत्पन्न होते रहते हैं। इनके उत्तर देने या प्राप्त करने की दिशा में उस तत्ववेत्ता की विचार दृष्टि और नवविचारणा परिपूर्ण होती जाती है।

वामन मल्हार दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी और अध्यापक थे। उनके विचारों में भारतीय दर्शन को समुचित स्थान प्राप्त है। भारतीय चिंतनपरंपरा, उसकी पवित्रता पर उन्हें उचित गर्व था। फिर भी उनके तत्वविचार मुख्य रूप से यूरोपीय विचार प्रणेताओं और विज्ञान में निष्ठा रखनेवालों, भौतिकवादी आधुनिक विचारकों के मानव- जीवन विषयक सिद्धान्तों से परिपुष्ट हुए हैं। उन्हें पाश्चात्य दर्शन के मानवतावाद, विज्ञान में निष्ठा, बुद्धिवाद, विकासवाद, गतिशीलता, ऐतिहासिक प्रगति, Greatest good of the greatest number, समता, स्वातंत्र्य, बंधुता, जनतंत्र, आदि तत्व मान्य रहे हैं।

वामनराव से पहले महाराष्ट्र में राष्ट्रवादी विचारों का सर्वाधिक प्राधान्य था। आरंभ में उनका झुकाव भी राष्ट्रवाद की ओर ही था। कुछ समय तक वे राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल भी हुए थे। परन्तु उनकी राष्ट्रवादीवृत्ति में उतनी कट्टरता नहीं थी। उसका एक सिरा विश्वकुटुंबवाद से सटा हुआ था। उनके विश्वकुटुंबवाद का संबंध केशवसुत की सुप्रसिद्ध कविता 'नवा शिपाई' (नया सिपाही) में की गई घोषणा से जोड़ा जा सकता है (उसकी आक्रामक भंगिमा को छोड़कर)।

वामनराव के विचारों में प्राथमिक रहा है व्यक्ति, उसकी सर्वागींण मुक्ति, उसका वैध विकास एवं सुख का उपभोग। इसका आशय यह न लिया जाए कि यह व्यक्तिवादी विचारप्रणाली अहंकेन्द्रित या सुखवादी स्वरूप की थी। इसमें त्यागभावना, कर्तव्यभावना, शुद्ध मनस्कता का भी स्थान था। वामनराव साफसाफ कहते थे कि जब तक समाज सुखी नहीं होगा तब तक व्यक्ति दुखी ही रहेगा। व्यक्ति सापेक्ष व्यक्ति हित के प्रति उनका अधिक झुकाव था, यह सही है किन्तु इसी के साथ वे यह भी मानते थे कि व्यक्ति द्वारा अपनी मुक्ति के लिए स्वयं साहसपूर्वक प्रयत्न किए बिना, समाज की मुक्ति संभव नहीं। इसी उद्देश्य से वे व्यक्ति की समाजसापेक्ष कर्तव्यभावना, समाजप्रतिबद्धता को पहला स्थान देते थे। समाज के दुखों से वामनराव व्यथित होते थे। (देखिए 'सुशीलेचा देव' उपन्यास में 'ही आमची समाज-व्यवस्था' अध्याय) वे समाज की मुक्ति से व्यक्ति की आत्मोन्नति का सरोकार स्थापित करते हैं। उनके अनुसार "क्षुद्र सुख के प्रति वैराग्य भाव उत्पन्नकर सारे संसार को समदृष्टि और प्रेम से देखना तथा उसकी उन्नत्ति के लिए उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्नशील रहना ही आत्मोन्नति का नाम है।" यही उनकी

आत्मोन्नति की व्याख्या है।

वामन मल्हार की रचनाओं मे 'know thyself' (आत्मज्ञान) का स्थायी स्वर था और उसे कायम रखते हुए गाए गए ज्ञानस्तोत्र बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनका विश्वास था कि मनुष्य जन्म से ही जिज्ञासु और ज्ञानप्रवण है। 'ज्ञान हे विष कि अमृत' लेख में ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन बड़े प्रभावी ढंग से किया गया है। वामनराव के सारे लेखन में चाहे वह ललित हो या ललितेतर ज्ञान के महत्व के प्रति आस्था प्रकट होती है। उनका विश्वास था कि "ज्ञान सर्वोच्च आनंददायी होता है, वह संसार को रमणीय बनाता है, नीति का पोषक है, वह सच्चे धर्म के प्रतिकूल नहीं बल्कि अनुकूल है। यदि मान भी लिया जाए कि ज्ञान आनंददायक नहीं, धर्म का पोषक नहीं, तो भी मैं कहूंगा ''मुझे ज्ञान ही चाहिए फिर धर्म आदि का जो कुछ होना हो, हो! अज्ञानाश्रित धर्म मै नहीं स्वीकारूंगा।" घोड़े की आँखो में अंधौटियाँ बाँध आसपास का सब कुछ छुपाकर जैसे हम पूरे रास्ते पर उसे हाँकते हैं वैसे ही मुझसे परिस्थिति का सच्चा ज्ञान छुपाकर कोई मुझे परंपरा के सारे रास्ते भर धकेलता ले जाने लगे तो उसके विरुद्ध विद्रोह करना मै अपना कर्तव्य समझूंगा। शास्त्र का कहना है ''ज्ञानान्मोक्षः'' पर यदि कोई ''ज्ञानान्नरकः'' कहकर आँखे दिखाए तो भी मैं ज्ञान के प्रति यही आस्था व्यक्त करूंगा - "त्वमेव शरणं मम"। अज्ञान से जो सुख की प्राप्ति होती है वह निचले दर्जे का होता है। "Ignorance is bliss" अज्ञान ही परमसुख किसके लिए? मात्र पशुओं के लिए। ज्ञान से जिम्मेदारी की भावना बढ़ती है, पापों का एहसास और तीव्र होता है, मन के लिए कष्टदायी अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं फिर भी ज्ञान को छोड़कर अज्ञान के सहारे चलना विचारशील मनुष्य के लिए संभव ही कहाँ है?''

उपर्युक्त उद्‌गारों से स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य और सौम्य लगनेवाले वामन मल्हार ज्ञान के स्तोत्र गाते हुए कितने अनुरक्त, तल्लीन और हठाग्रही हो जाते हैं। उन्होंने ज्ञान पर किए गए आक्षेपों का खंडन अपने 'ज्ञान हे विष की अमृत?' शीर्षक लेख में विस्तार से किया है। इस लेख के समापन वक्तव्य में उन्होंने आग्रहपूर्वक प्रतिपादित किया है कि 'ज्ञान से उत्पन्न जो सात्विक आनंद होता है वह बहुत उच्च कोटि का होता है। पहले पहले वह चाहे कितना ही असमाधानकारक लगे और क्षुद्र मनोविकारों को कितना ही तिलमिला दे तो भी ज्ञान के सात्विक आनंद लाभ के लिए यह मूल्य चुकाना ही चाहिए।'

वामन मल्हार की इस ज्ञानकल्पना में वेद, शास्त्र अथवा आप्तवचनों से प्रमाण का कोई स्थान नहीं है। लोकमान्य तिलक के समान उन्होंने 'प्रामाण्य बुद्धिर्वेदेषु' का आश्रय नहीं लिया। उनका जोर बुद्धिवाद पर रहा है। परंतु यह बुद्धिवाद तर्ककर्कश और शुष्क नहीं है। उन्होने उसे प्रेम एवं भावना का पुट दिया है। बुद्धिवादी की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं "कोई बात अच्छी है या बुरी, खरी है या खोटी इसका निर्णय करने की अंतिम कसौटी शास्त्र या आप्तवचन स्वीकार न करते हुए अपनी विवेकबुद्धि को

ही अंतिम कसौटी मानना बुद्धिवादी होना है।" परंतु उनके सैद्धांतिक चिंतन में भावना का भी स्थान था। केवल विचारों या बुद्धिवाद से जीवन के सारे प्रश्न हल हो जाएँगे इस पर विश्वास नहीं था। वे बुद्धिवाद के साथ सात्विक भावना और सामाजिक दृष्टिकोण भी आवश्यक समझते थे। बुद्धिवाद को प्यार के sweetness and light माधुर्य और आलोक से संयुक्त करने पर वामनराव ने विशेष ध्यान दिया है।

गीता में वर्णित 'स्थितप्रज्ञ' वामन मल्हार का आदर्श रहा है। इस स्थितप्रज्ञ के चित्र 'आश्रम हरिणी' में ऋषिमुनियों के चित्रण में तथा 'रागिणी' में हिमालय के प्रियव्रह्मस्वामी के चित्रण में दिख जाता है। इन ऋषिमुनियों की ज्ञान-लालसा प्रखर होते हुए भी मानव की कमजोरियों और अपूर्णता को करुणार्द्रता से देखती है। "To understand all is to parden all." (सबको समझ लेने का आशय है सबको क्षमा कर देना) ऐसा ही एक तत्त्वसूत्र भी उन्होंने 'इंदू काळे व सरला भोळे' शीर्षक उपन्यास में दिया है। वामन मल्हार ज्ञानप्राप्ति को मानवजाति का अंतिम ध्येय मानते थे किंतु यह ज्ञान शुष्क नहीं होना चाहिए उसे सत्य, सौजन्य व सौंदर्य से अलंकृत करना आवश्यक है। इसीलिए उनके उपन्यास विचारप्रधान होते हुए भी बहुत ललित हो गए हैं।

वामन मल्हार की ज्ञान संकल्पना के विस्तार में जो भारतीय आध्यात्मिक परिभाषा का आश्रय उपलब्ध होता है उसमें उनके ज्ञान संबंधी विचारों में सांप्रदायिक स्वरूप के पारमार्थिक दृष्टिकोण का कोई स्थान नहीं है। उनका ध्यान दैनंदिन मनुष्य जीवन में भौतिक सुख संपन्नता और मानसिक शांति उत्पन्न करने और इस अपूर्ण जगत को पूर्णता की ओर अग्रसर करने के संबंध में विचार करने में लगा ही रहता था। इनकी प्राप्ति के लिए, उनके विचार में, मनुष्य को किसी न किसी ध्येय की लगनपूर्वक उपासना करनी आवश्यक है। ध्येय को ही भगवान मानकर आराधना करने से सिद्धि प्राप्त होती है। उन्होंने अपने लेख में 'ध्येय हाच देव' घोषणा की है। इसीविचार को उन्होंने 'सुशीलेचा देव' नामक उपन्यास में भी व्यक्त किया है। वामन मल्हार किसी पारंपारिक या सांप्रदायिक आराध्य को नहीं मानते थे। वे स्वयं को आगरकर संप्रदाय का विवेकवादी कहते थे। उनका मनुष्य में निहित 'सत् अंश' पर विश्वास था। 'ध्येय हाच देव' शीर्षक लेख में उन्होंने प्राचीन और आधुनिक दोनों की देव कल्पना की सहायता ली है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सांकेतिक देवकल्पना से मनुष्य दैववादी स्थितिवाला वनता है। इससे कभी कभी मानव के उन्नयन में अड़चने उत्पन्न होती हैं। इसलिए उनके अनुसार मनुष्य के प्रयत्न को, उसके जीवन को ऊर्जा प्रदान कर आगे बढ़ाते हुए, सद्गुणों का विकास करनेवाले जीवन के लक्ष्य का ही नाम देव है। उनका कथन था कि "तन मन धन से अपने अपने लक्ष्य की आराधना करते हुए उसे संपन्न करनेवाला ही मेरी दृष्टि में आस्तिक होता है। देव या आराध्य पर आस्था रखने में जो आनंद प्राप्त होता है ठीक वैसा ही आनंद अपने लक्ष्य के प्रति लगन रखने में भी होता है। यह आनंद अधिक उच्चतर होता है।" 'इंदू काळे व सरला भोळे' उपन्यास

में उनका एक कथन 'ध्येय अर्थात् दुःख' ऐसा भी है, साथ ही उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया है कि ध्येयसाधना में दुःख भोगने में उच्चस्तर का आनंद होता है। किसी विशिष्ट देवता को मानने की अपेक्षा मानव में 'देववृत्ति' जागृत करने पर उन्होंने अधिक जोर दिया है।

वामन मल्हार सांप्रदायिक दृष्टि से निरीश्वरवादी ही मान लिए जाएँ तो भी वे जगत और मानव को तुच्छ नहीं समझते थे। वे मानते थे कि संसार में बहुत से दुःख हैं, वह अपूर्ण है, मनुष्य कमजोरियों का शिकार हो जाता है, किंतु साथ ही उनमें दृढ विश्वास था कि जगत विकासशील है, आनंदमय है, मनुष्य में मूलरूप से सत्प्रवृत्तियाँ होती हैं, उसमें ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा होती है, वह जिज्ञासु है। उनकी मान्यता थी कि मानव-जीवन में अनेक दुःख अज्ञान, गैरसमझ, स्वार्थबुद्धि से उत्पन्न होते हैं। वे विश्वकुटुंबवाद की कल्पना के विकास को देशकाल एवं परिस्थिति सापेक्ष मानते थे। उनके अनुसार व्यक्ति को अपना ध्येय और अपनाधर्म निश्चित कर लेनेपर अपनी प्रकृति के साथ देशकाल और परिस्थिति का विचार करते हुए विश्वकुटुंब कल्पना नियत करनी चाहिए। उनके विचारों का केंद्रबिंदु 'स्वधर्म' था। उनकी सारी विचार-प्रणाली कार्य और अकार्य विषयक विवेक सहित अतःकरण की प्रवृत्ति के अनुसार चुने हुए स्वधर्म से संबद्ध थी। उनके विचारों का समीकरण लिखा जाए तो वह होगा देव=स्वधर्म। "हमारा शुद्ध मन हमें जो कर्तव्य रूप से निर्दिष्ट करे वही करना चाहिए। उसे निरंतर करते रहने से सुख मिलता है वही सच्चा नित्य, शाश्वत आनंद होता है। वही निःश्रेयस् सुख, वही स्वर्ग और आत्मा की अमरता है।" 'इंदू काळे व सरला भोळे' उपन्यास में इस विवेचन से वामनराव की स्वधर्म-कल्पना पर्याप्त स्पष्ट हो जाती है। "जीवन सुख में बीतेगा या दुख में यह प्रश्न गौण नहीं है क्या? मुख्य प्रश्न तो यह है कि हम अपना कर्तव्यकर्म कर रहे हैं कि नहीं? हमारा ज्ञान और सौजन्य उत्तरोत्तर बढ़ रहा है कि नहीं?" 'रागिणी' के प्रिय ब्रह्मस्वामी के ये उद्गार भी इस संदर्भ में विचार करने योग्य है। 'आधुनिक शिक्षितांचा वेदांत' से वामन मल्हार का आशय यही कहा जा सकता है।

वामन मल्हार ने धर्म की व्याख्या को शुद्ध बुद्धि पर अवलंबित किया है। अपने 'नीतिशास्त्र प्रवेश' ग्रंथ के उपसंहार में वे कहते हैं "तार्किक ज्ञान ही धर्मनिष्ठा का शरीर है। इस ज्ञानात्मक शरीर को जो भावना के तेजोमय आलोक से व्याप्त कर आत्मसात् कर लिया जाए तो इस प्रक्रिया से प्राप्त अवस्था को मैं धर्म का ही नाम दूंगा।"

वामन मल्हार के अनुसार यह शुद्ध बुद्धि पूर्ण स्वधर्म वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति का अपने अपने कर्तव्यपालन का धर्म ही है। व्यक्ति यह स्वधर्म कैसे पहचाने? इस धर्म को निश्चित करने की सर्वकुंजी कौन सी है? कार्याकार्य विवेक का आधार क्या हो? इन सभी उलझनभरे प्रश्नों पर उन्होंने सम्यक् विचार किया है। बुद्धि से विवेकी, विचारवान्, शांत, निस्वार्थ और शुद्ध होने के लिए एवं कर्तव्य की दिशा में चलने लायक यथावश्यक

तादात्म्य निर्माण करने की दृष्टि से, सत्य, सौजन्य और सौंदर्य की जो उपासना पद्धति वामन मल्हार ने सुझाई है वह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। उनकी विचार-सृष्टि और कला की उपासना में इन तीनों गुणों अथवा मूल्यों का अनन्य महत्त्व है।

Beauty, Truth, Goodness (सौंदर्य, सत्य, सद्वृत्ति (अच्छाई)) की त्रयी तो प्रसिद्ध ही है। मानव जीवन के लिए ये महत्त्वपूर्ण ध्येय ही नहीं अन्यतम मूल्य माने जाते हैं। वामनराव ने इन तीनों में से सत्य और सौंदर्य को तो अपनी त्रयी में समाविष्ट किया ही है। रहा शेष सौजन्य। अतएव कहना होगा कि उनकी सौजन्य की संकल्पना का आशय Goodness है। यहाँ सत्य-सौजन्य-सौंदर्य का विशिष्ट क्रम विचारणीय प्रतीत होता है। उन्होने सत्य और सौंदर्य के मध्य में सौजन्य की स्थाना की है। यद्यपि वामनराव तीनों के ही उपासक हैं तथापि सौजन्य उनकी प्रकृति का स्थायीभाव है।

उक्त त्रयी में यह उद्देश्य निहित है कि जीवन चिरकाल तक मंगलमय और सुंदर हो। सतह पर त्रयी के घटक अलग अलग भले ही दिखते हों परंतु वे पूरक भी हैं और सापेक्ष भी। अंततः वे एकही हैं। उनमें आंतरिक घनिष्ठता है। उन्हे दृढ विश्वास था कि सौजन्य से ही सत्य और सौंदर्य के आकलन में मदद मिलती है। सौजन्य ही सत्य को कमनीय और सौंदर्य को मनोहर बनाता है। इसी लिए वामनराव सौजन्य को विशेष महत्त्व प्रदान करते प्रतीत होते हैं।

वामन मल्हार की यह त्रयी उनके जीवन संबंधी विचारों के समान ही साहित्यिक विचारों में भी प्रकट हुई है। इसी तत्वत्रयी की उपासना के आधार पर वे साहित्य का प्रयोजन और अंतिम मूल्य भी निश्चित करते हैं। वामन मल्हार के सत्य संबंधी चिंतन में वैज्ञानिक पद्धति और बुद्धि को प्रमाण मानना प्रधान था फिर भी पाश्चात्य शास्त्रों का विकास अपूर्ण होने तथा तर्क पद्धति की अपनी अंतर्निहित सीमा को ध्यान में रखते हुए सत्य के अन्वेषण के लिए शास्त्र और तर्क की जोड़ी को शुद्ध अंतःकरणकी प्रवृत्ति से भी युक्त करना चाहिए। वामनराव का यह विचार पहले भी सूचित किया जा चुका है। उनकी मान्यता है, सत्य में स्वतःसिद्ध पवित्रता होती है। साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने साहित्य प्रेमियों को परामर्श दिया था कि सत्य की अनुभूति होते ही उसकी उपासना प्रह्लाद की तरह करनी चाहिए। पर, सत्य का प्रतिपादन करते समय देशकाल पात्र और परिस्थिति का भी विचार कर लेना आवश्यक है। सत्य की पहचान अनुचित तरीकेसे करना आग से खेलने के समान होता है। इसका संकेत उन्होंने 'विस्तवाशी खेळ' नाटक के माध्यम से दिया है।

सत्य कितना ही श्रेष्ठ हो उसे व्यक्ति की ग्रहण-क्षमता आँक कर ही प्रस्तुत करना चाहिए। जिसमें जितनी ग्राह्यता हो उसे उतना ही देना चाहिए, इसका वामनराव को भलीभाँति ध्यान था। सत्य अंतमें एकात्म और अविभाज्य होता है, तो भी उच्चतर उच्चतम जैसे आरोही क्रम से स्पष्ट करना होता है, पूर्ण सत्य और एकांगी सत्य जैसा वर्गीकरण करना पड़ता है। अपने 'नीतिशास्त्र प्रवेश' में उन्होने इस विचार की व्याख्या

करते हुए लिखा है - 'पूर्ण सत्य वह है जिससे आत्मा का पूर्ण समाधान हो और जिसे प्राप्त करने पर आत्मा का केवल एकांगी किंतु पूर्ण समाधान हो वह एकांगी सत्य होता है।' वामनराव का कहना है कि सत्य के अनेक पक्ष होते हैं उनकी प्रतीति प्रकृति भिन्नता के कारण किसी अंश में भी भिन्न ही होगी। यह पहचानते हुए तदनुसार जीवनव्यवहार करना उचित होता है।

सत्य की तरह ही वामनराव मन की शुद्धता का संबंध शिवत्व से, नीति से भी जोड़ते हैं। उनके अनुसार नीति का बीज प्रेम होता है। उन्होंने 'नीतिशास्त्र प्रवेश' में नीति की विविध संकल्पनाओं का विवेचन किया है। इस विवेचन से ही 'नीती चे बीज प्रेम' निष्कर्ष निकाला है। आत्मपरीक्षण द्वारा उचित अनुचित निर्धारित करना ही नीति का उद्देश्य होता है। नीति का संबंध बाहरी कर्मकांड से न होकर आंतरिक शुद्धि से है। उनका कहना है कि नीति शुष्क नहीं होनी चाहिए। उसमें बुद्धि का करुणासिक्त होना जरुरी है। नैतिकता और रूढ़िगत धर्मविचार में वामनराव अंतर करते थे। 1930 के बाद, प्रसंग आने पर, उन्होंने पुराने पारंपारिक नीति विचारों पर, रसेल-फ्रायड आदि के परंपरा विरोधी सिद्धांतो को साथ रखते हुए चिंतन भी किया है। 'विचार विहार' पुस्तक में 'नवगतवादा विषयी माझे काही विचार' शीर्षक उनका लेख इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। नीतिविषयक नई कल्पना भले कितनी ही क्रांतिकारी क्यों नहो, वामनराव ने उसपर मनोयोग और ईमानदारी से विचार किया है। उसमें सही-गलत परखा है। सांप्रदायिकनीति और उच्चतर नीति में भेद करते हुए जो नई कल्पना उन्हें उच्चतर नीति की पोषक और जीवन में कल्याण के लिए वांछनीय प्रतीत हुई है, उसे बिना झिझक स्वीकार किया है। नवनीतिविषयक विचारों में स्त्री- पुरूष संबंध के बारे में जो नए विचार थे उनका भी यथोचित आदर और स्वागत किया है। इन संबंधों में खरीनीति के सूत्र 'सुशीलेचा देव' उपन्यास में दिए गए हैं। खरी या सही नीति की दृष्टि से ये बाहरी तौर पर कोई संदेश न देनेवाले सूत्र कितने उपादेय है, इसका विवेचन उन्होंने 'स्मृतिलहरी' के माध्यम से किया है।

अपनी नई नीति के समर्थन में उनका पैंतरा मात्र मूर्तिभंजन के लिए मूर्तिभंजन का नहीं होता था। परंपरा में उन्हें वही स्वीकार्य और आदरणीय लगता था, जो सुंदर हो, पवित्र हो और उदात्त हो। उदाहरण के लिए विवाह संस्था। इस संस्था के अंतर्गत प्रौढ़ विवाह, पुनर्विवाह इत्यादि तो उन्हें मान्य थे परंतु इन सब में वे चाहते थे कि विवाह संस्था की पवित्रता कायम रखी जाए। 'आश्रम हरिणी' में उन्होंने स्पष्ट किया है कि सुलोचना की दो पतियों के साथ गृहस्थी बाहर से कुछ विचित्र भले ही मालूम हो परंतु विशिष्ट परिस्थितिमें वह कैसे पवित्र एवं कल्याणप्रद ठहरती है। सामान्य और अपवादात्मक परिस्थिति में लागू नियमों में वे फर्क करते थे। अपवादात्मक परिस्थिति में नियमों का उल्लंघन उन्हें मान्य था परंतु अकारण ही तोड़मरोड़ को वे स्वीकार नहीं करते थे। पारंपारिक विचारों की दृष्टि से 'विचारलहरी' में 'विवाहित स्त्रियांची कर्तव्यें'

लेख पठनीय है।

सौजन्य के विषय में वामनराव के ये विचार हैं - सत्य की तरह ही सौजन्य का परमतत्व हमें लभ्य नहीं। वह देशकाल परिस्थिति सापेक्ष होता है। देशकाल के अनुसार उसमें भिन्नभिन्न आकार और रंग उभरते हैं और वह विभिन्न क्रियाओं द्वारा व्यक्त होता है। कभी रक्तस्राव करने से तो कभी उसे रोकने से सौजन्य की प्रतीति होती है। इसलिए सौजन्य की एकही निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। उसका संबंध सच्ची नीति और प्रेम से होता है।

वामनराव के विचारों से पता लगता है कि वे सौंदर्य को एक स्वतंत्र मूल्य नहीं मानते। किसी संदर्भ मे किए गए विवेचन में उनका कहना है कि सत्य मूलतः सुंदर नहीं होता (देखिए - डा. केतकर के उपन्यासों पर व्यक्त किए गए उनके विचार)। यद्यपि वे सौंदर्य की संकल्पना में अनुपात और सौष्ठव इत्यादि घटकों का समावेश करते हैं फिर भी उसमें बाहरी आकार की अपेक्षा आंतरिक पवित्रता को अधिक महत्त्व देते हैं। इसीलिए उन्हें सुंदर वेश्या तिरस्करणीय और असुंदर दिखनेवाली चरित्रवान नारी का आंतरिक सौंदर्य मोहक लगता है। इसी आधारभूमि पर उनके कलाविचारों का विकास हुआ है।

वामन मल्हार के सैद्धांतिक विचारों का अनुशीलन करने में आरंभिक कठिनाई यह आती है कि उन्होंने अपने विचारों को व्यवस्थित रूपसे किसी एक पुस्तक में एकत्र नहीं किया है। केवल 'नीतिशास्त्र प्रवेश' में ही उनकी चर्चा उपलब्ध होती है। ललित साहित्य होने के कारण, उनके उपन्यासों में प्रासंगिक रूपसे व्यक्त विचारों का भी अधिक स्वतंत्रता से अध्ययन नहीं किया जा सकता। 'साक्रेटिसाचे संवाद' अविकल होते हुए भी प्रायः अनुवाद जैसा ही है। अपने ज्येष्ठ भ्राता महादेव मल्हार जोशी के 'आधुनिक सुशिक्षितांचा वेदांत' ग्रंथ के परिशिष्ट में व्यक्त विचार वामनराव के स्वतंत्र चिंतन के द्योतक न होकर प्रतिक्रियात्मक स्वरूप के हैं। अतएव उनकी विचारसंपदा का परिचय प्राप्त करने के लिए मुख्यतः 'विचार-विलास', 'विचार- सौंदर्य', 'विचारलहरी' शीर्षक स्फुट लेखसंग्रहों का सहारा लेना पड़ता है। इन संग्रहों में विचार, प्रसंगानुसार प्रकट किए गए है। उनमें अनावश्यक विस्तार और पुनरुक्ति नज़र आती है। फिर भी कोई नयापुराना विचार हर वार उन्होंने मूलगामी पद्धति से तथा उपलब्ध ताज़े ज्ञान के प्रकाश में प्रस्तुत किया है। इसलिए उसमें कुछ न कुछ नया अवश्य मिल जाता है। उनके विचार निरूपण में नीरस शास्त्रीयता नहीं वरन् रसिक, भावरंजक वृत्ति परिलक्षित होती है जिससे उसमें स्वाभाविक रूप से ही सौंदर्य झलकने लगता है। वामनराव की आलोचना वृत्ति उन्हें स्वयं आलोचना का विषय बना देती है। साक्रेटीज़ उनकी पसंद का लेखक और 'श्रीमद्भगवद्गीता' उनका प्रिय दार्शनिक ग्रंथ था। परंतु इन दोनों के प्रति औत्सुक्यपूर्ण आदर तथा आलोचनात्मक दृष्टि रही है। उनके आलोचक स्वभाव से लो. तिलक का 'गीतारहस्य' भी नही बच पाया है। कुछ समय तो उन्होंने लो.

तिलक के सान्निध्य में बिताया था फिर भी महाराष्ट्र के चिंतकों में उन्हे आगरकर ही ज्यादा करीव लगते थे। वे अपने को आगरकर संप्रदाय का विवेकवादी मानते थे। इन दोनों में सत्यनिष्ठा, तत्त्वजिज्ञासा, सामाजिक चिंतन, बुद्धि को प्रमाण मानने और शुद्ध चरित्र आदि के संबंध में बहुत समानता दिखाई देती है। परन्तु आगरकर के जीवन में जो आचरण का सामर्थ्य था, उसका वामनराव में अभाव था। उन्होंने कृति की अपेक्षा उक्ति से ही अपना समाधान कर लिया था और अपनी सीमाएं कभी नहीं भुलाई। विचार सौंदर्य के अंतर्गत 'मी आणि माझे टीकाकार' लेख में वे स्वयं को क्रमवादी क्रांतिकारी कहते हैं।

वामन मल्हार स्वतंत्र दार्शनिक न भी माने जाएँ तो भी यह निस्संदेह रूप से कहा जा सकता है कि वे दार्शनिक विचारों के एक श्रेष्ठ शिक्षक थे। उनमें आदर्श शिक्षक के सभी गुण थे। इसी कारण यह कथन सार्थक लगता है कि 'उन्होंने महाराष्ट्र को विचार करना सिखलाया'। 'विचारलहरी' के एक लेख में, जिसका शीर्षक 'माझे अनुभवांचे व विचारांचे सार' है, उन्होंने कहा है - "प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ईमानदार समझ से व्यवहार करना चाहिए और दूसरों की प्रामाणिक समझ के प्रति आदर रखना चाहिए।" जीवनभर उन्होंने इसी सिद्धांत का पालन किया। उन्होंने महाराष्ट्र को अपने वैचारिक साहित्य से प्रभावित आचरण करने तथा स्वतंत्रतापूर्वक सत्य के मार्ग का निर्भय अनुसरण करने के लिए तत्पर और सक्रिय बनाया। विचार क्षेत्र में उनका यह अत्यंत महत्व का अवदान है और अविस्मरणीय है।

इस प्रकरण को समाप्त करते समय वामन मल्हार विषयक एक आक्षेप पर भी संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक है। विचार-क्षेत्र के प्रति उनकी अभिजात, निर्मल वृत्ति की सराहना के बावजूद एक लंबे समय तक उन्हें 'संशयात्मा' कहकर संबोधित किया गया। अपने पक्षधरों और विपक्षियों के बीच कटु संघर्ष के दौरान वामन मल्हार इधरउधर जाते-आते रहते। उस काल के तुमुल कोलाहल में उन्होंने उच्चस्वर में पुकारा भी 'पक्ष भेद भले बना रहे पर पक्षद्वेष नहीं होना चाहिए'। किंतु इसे किसी ने नहीं माना। लोगों ने सम्यक् आत्मपरीक्षण छोड़ अपनी कमजोरियों को नज़रअंदाज करते हुए, वामन मल्हार को ही अपना मोहरा बनाया और उन्हे संयशवादी सिद्ध करने का प्रयत्न किया। वास्तविकता यह है कि वामनराव विचारों की भंवर में फँसे ही न थे। यह ठीक है कि उनके विचारों में सांप्रदायिकता नहीं थी। उनका तो यह आग्रह ही था कि विचारों में सांप्रदायिकता नहीं होनी चाहिए। विचारपद्धति के विषय में भी उनमें कभी कोई भ्रांति नहीं रही। लेखन के आरंभ से अंततक उनकी विचारप्रक्रिया में एक सूत्रबद्धता है। उनकी दृष्टि और शिक्षा दोनों ही इस बात पर जोर देतीं थी कि चिंतन का समग्र दायरा ध्यान में रखते हुए उसकी सारी गुत्थियों का जायज़ा लेकर ही कोई निर्णय लिया जाए। वस्तुतः इसके लिए तो उन्हीं के समान उच्चकोटि के विचारक से परामर्श द्वारा अपनी समस्या का हल खोजना चाहिए। उन्हें संशयवादी

बताकर उनकी विचारपद्धति की उपेक्षा आत्मघातक सिद्ध हो सकती है।

वामन मल्हार के संशयवाद का एक दूसरा पक्ष भी है। प्रचलित ज्ञान के विषय में संदेह करना, उस ज्ञान के सिलसिले में नए प्रश्न उपस्थित करना, उसके सुप्त या प्रकट पहलुओं को लेकर बहस करना, उसका दूसरा पक्ष देखना, प्रचलित ज्ञानव्यूह की विसंगतियाँ और सीमाएँ स्पष्ट करना, भी संशयवाद के लक्षण होते हैं। इस प्रकार की प्रश्नात्मक अभिवृत्ति (Questioning attitude) नए ज्ञान के हित में प्रेरक और पोषक साबित होती रही है। वह नवज्ञान की गंगोत्री मानी जा सकती है। इसी स्वभाव के कारण नवयुग के तरुण विचारकों को वामन मल्हार सर्वाधिक प्रिय लगते थे, आगे भी लगते रहेंगे। वामन मल्हार ने अपने संबंध में की गई आलोचना का खंडन इन शब्दों में किया है :

"मेरा स्वभाव किसी विषय के सभी पहलुओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने और ऐसा करने के लिए प्रवृत्त करने का है। बहुत से लोगों को आज भी इसका महत्व समझ में नहीं आया है। मैं जानता हूँ, 'संशयात्मा विनश्यति'। अनेक अवसरों पर निश्चयात्मक वृत्ति अपनानी पड़ती है और तदनुसार आचरण भी करना पड़ता है, यह भी मै अच्छी तरह समझता हूँ, केवल समझता ही नहीं उसके अनुसार आचरण भी करता हूँ और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करता हूँ—किंतु ऐसा न हो तो अनिर्णीत स्थिति को ख़राब, सर्वांगीण विचार को विकार, अनिश्चय को अधकचरापन समझनेवाली विचार- प्रक्रिया से हड़बड़ी में कोई निश्चय करना मैं पाप समझता हूँ। कई बातें आज भी अनिर्णीत अवस्था में हैं उनके विषय में निर्णयात्मक राय देने की जरूरत न होने पर भी वज़नदार प्रमाण के अभाव में निर्णयात्मक मत ठोक देना मैं पाप करने के समान ही मानता हूँ।"

3.
उपन्यास लेखन

एक चिंतक और दार्शनिक के बतौर वामन मल्हार की जितनी ख्याति है उतनी ही मराठी के एक महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार के रूप में भी है। हरिनारायण आपटे के बाद का युग 'रागिणी' के रचयिता वामन मल्हार जोशी के नाम से ही पहचाना जाता है। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर ने उन्हें मराठी के 'तात्विक उपन्यास के जनक' माना है। सिद्धान्त विवेचनपूर्ण उपन्यासों का आरंभ वामन मल्हार से ही होता है।

वामन मल्हार से पूर्व हरिनारायण आपटे ने मराठी उपन्यास को साहित्य की एक विधा की प्रतिष्ठा दिला दी थी। "हरिभाऊ के मन में उपन्यास लिखने की तीव्र कामना थी इसलिए पाश्चात्य उपन्यास पढ़कर उन्होंने उपन्यास विधा की विशेषताएँ समझने का प्रयत्न किया" और उसमें वे सफल भी हुए। उपन्यास को सर्वाङ्ग रुचिर बनाने के यत्न में हरिभाऊ ने उसे अभिव्यक्ति शैली के सौन्दर्य से सम्पन्न किया। जीवन के यथार्थ पर बल देनेवाली कृति प्रस्तुत की। और इसतरह मराठी उपन्यास के 'हरिभाऊ युग' का आरंभ हुआ।

परंतु वामनराव 'हरिभाऊ युग' की धारा से अलग ही रहे। उन्होंने हरिभाऊ द्वारा निर्धारित उपन्यास के रूप को स्वीकार नहीं किया और अपने उपन्यासों में अपने ही शिल्प का प्रयोग किया। संभवतः उनके तत्वजिज्ञासु व्यक्तित्व के समान साहित्यविषयक धारणा ही इसका कारण बनी। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी रचना धर्मिता का प्रयोजन (गीता के मुहावरे में) "असत्य, दुर्जनता और हर प्रकार की कुरूपता का विनाश तथा सत्य, सौजन्य और सौंदर्य का संस्थापन करना" था। उन्होंने लिखा है - "जिस कलाकार को कुछ कहना ही नहीं, जिसके पास कहने योग्य कुछ हो भी न, उसकी कला छोटे बच्चे के रबर के फुग्गे जैसी सुन्दर तो दिखेगी किन्तु निरी खोखली होगी।" आगे वे दृढ़तापूर्वक कहते हैं - "साहित्यात्मक कला की ज्ञान और नीति से घनिष्ठ संसक्ति और स्नेह संबंध है।" उनकी मान्यता है कि इस रीति से 'सांसारिक दुःखों की गाथा' समाप्त करना और 'दैवी सम्पति' का साम्राज्य स्थापित करना साहित्य का ध्येय होना चाहिए। वे साहित्य-कला का महत्व निस्संदेह जानते थे, परंतु उनकी धारणा यह भी थी कि "जीवन केवल कलात्मक नहीं है। जीवन में जो अतिशय रम्य और वंदनीय बातें हैं उनमें कला के साथ साथ नीति और सत्य का भी समावेश होता है।" तो वामन मल्हार

की उपन्यास सर्जना की पृष्ठभूमि हरिनारायण के समान जीवन के यथार्थ पर बल नहीं देती बल्कि जीवन के उच्च आदर्शोंका निर्माण और उनकी छानबीन करनेवाली है।

मराठी उपन्यास के जन्मकाल से ही इसमें दो विशिष्टताओं अर्थात् ज्ञान और मनोरंजन को मान्यता प्राप्त थी; परंतु वामन मल्हार के उपन्यासों में इनसे भी कुछ अधिक है और वह है उनकी आकर्षकता। इसे मनोरंजन जैसी उथली संज्ञा देना ठीक नहीं होगा। उनके उपन्यास पढ़ने से ज्ञान प्राप्त होता है, किंतु पहले के और समकालीन उपन्यासों जैसी उपदेशों की भरमार और आदेशात्मकता नहीं है। ज्ञान तो उनके उपन्यासों में रमी हुई चिंतनवृत्ति से प्राप्त होता है। इसी वृत्ति से, पाठकों को विचार करने के विविध पक्ष, दिशा, कोण स्पष्ट करते हुए अंतर्मुखी बनाना उनके उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य रहा है। अपने उपन्यासों में उन्होंने जटिल दार्शनिक विचारों की ललित पद्धति से, लगातार व्यापक जांच पड़ताल की और नए नए शिल्प प्रयोग किए। नई युक्तियाँ भी काम में लाए। इस तरह उन्होंने हरिभाऊ काल का रचनातंत्र ही बदल डाला। अतः उन्हें सहज प्रयोगवादी उपन्यासकार माना जाने लगा।

वामन मल्हार की इस ख्याति की चर्चा के सिलसिले में शुरू में ही इसके विपरीत पक्ष पर भी विचार कर लेना चाहिए। एक वर्ग तो उन्हें उपर्युक्त आधार पर युगप्रवर्तक सिद्ध करता था परंतु एक दूसरा वर्ग भी था जो उन्हें उपन्यासकार ही मानने से इन्कार करता था। उसके मतानुसार वामन मल्हार में उपन्यासकार के गुण कभी भी नहीं थे। उनकी रचनाएँ शिथिल हैं, वर्णन स्थूल और सीधा-सपाट है, विवरण दोषपूर्ण है। उनके पात्र हाड़मांस के नहीं लगते। वे उनके विचारों को प्रतिबिंबित करने के साधन मात्र हैं। वामनराव के संबंध में इन मतभेदों की तह में उपन्यास की संकल्पना विषयक मतभेद है। उपन्यास के बाह्य सौंदर्य को महत्व देनेवाले पाठकों को वामनराव की कृतियाँ पसंद नहीं आतीं, और जो पाठक उपन्यास पर आंतरिक सौंदर्य की दृष्टि से विचार करते हैं, उन्हें वामन मल्हार के उपन्यास विलक्षण और साभिप्राय लगते हैं। वामनराव को खुद अपने उपन्यास लेखन के बाह्य दोषों का ज्ञान था। उन्होंने स्वीकार किया है- "मेरे उपन्यासों में सम्यक् अनुपात का थोड़ा अभाव है, और शिल्प की दृष्टि से भी कई दोष रह गए हैं। — मुझसे वेश-भूषा का, चेहरे का, अंगसंचालन का वर्णन नहीं बनता।" इस आत्मस्वीकृति के बाद उन्होंने अपने उपन्यासों में आंतरिक सौंदर्य की विशिष्टता की ओर आकर्षित करते हुए कहा है, "मेरा ध्यान बाहरी वेशभूषा इत्यादि की बात करने की अपेक्षा आंतरिक गतिविधि की ओर अधिक है। इन गतिविधियों की जटिलताओं को स्पष्ट करने की दृष्टि से बाहरी चीज़ों के वर्णन की जरूरत नहीं होती।"

अपने उपन्यास की दूसरे प्रचलित उपन्यासों से भिन्नता दर्शाने के लिए उन्होंने प्रथम उपन्यास 'रागिणी' को 'काव्यशास्त्र विनोद' कहा है और उसमें इन्हीं शब्दों में एक

उपशीर्षक भी दिया है। रागिणी में ही नहीं उनके सभी उपन्यासों में काव्यशास्त्रविनोद को अग्रस्थान मिला है। यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने काव्यशास्त्र विनोद को विशेष अवसर प्रदान करने की दृष्टि से कथावस्तु को निमित्त बनाकर उपन्यासों की रचना की है।

वामनराव के उपन्यासों का मूल्यांकन करते समय उनका यह परिप्रेक्ष्य और पूर्वोक्त ललित साहित्य संबंधी दृष्टिकोण ध्यान में रखना होगा। इनके अतिरिक्त समकालीन वाङ्मय संस्कृति, सुशिक्षित पाठकों की अभिरुचि तथा वामनराव की उपन्यास विषयक धारणा को भी समक्ष रखना होगा। उनके उपन्यासों के पात्र सुसंस्कृत, उच्चशिक्षाप्राप्त तथा सैद्धान्तिक विषयों के प्रति जिज्ञासा रखनेवाले हैं। इसलिए उनकी कृतियों में सैद्धान्तिक चर्चा सतही न होकर कलाकृति के अंग-संघटन का ही एक भाग होती है।

जैसा कि कहा जा चुका है वामनराव का पाठकवर्ग तत्कालीन सुशिक्षित परिपक्व चेता और विचारप्रेमी था। नई शिक्षा और नए संस्कारोंवाला यह वर्ग पुरोगामी प्रकृति का था। इसने पुरातन के साथ नूतन को भी अपनाया था। इसकी रुचि नारीशिक्षा, व्यक्ति की आज़ादी, भारतीय अध्यात्म, पाश्चात्य इहवाद, राजनीति, समाजव्यवस्था विषयक विविध प्रवृत्तियों और मतमतान्तरों तथा जीवन में धर्म का स्थान इत्यादि विषयों में थी। यह इन विषयों के सभी पक्षों की गहराई से समीक्षा करने को उत्सुक रहता था।

इस विशेष पाठक वर्ग को ध्यान में रखते हुए लिखने का असर उनके उपन्यासों पर पड़ना स्वाभाविक ही था। इसीलिए उनके कई पात्र श्रेयप्रेम संबंधी प्रश्नों से घिरे हैं। इनके चरित्र-चित्रण से ही वामनराव के उपन्यास को विशिष्ट गठन और गति प्राप्त हुई है। पात्रों की चर्चा से उनके स्वभाव, रूचि और प्रवृत्ति का पता चलता है, उनके परस्पर संबंधों से नाट्य का निर्माण होता है। इन उपन्यासों के मुख्य पात्र समझदार, सुसंस्कृत, विचारप्रवण और सौजन्यपूर्ण स्वभाव के हैं। इन सब से उपन्यास का वातावरण गंभीर, सीधा-सच्चा और विश्वसनीय बन जाता है। तत्वचिंतन के साथ चतुर तर्कयुक्तियाँ रंजक परिहास, रोचक संवाद, विनोदी वादविवाद इत्यादि का अस्तित्व इसी वातावरण का द्योतक है। उसी के कारण वामनराव के उपन्यासों में सैद्धांतिक चर्चा की शुष्कता का शमन हो जाता है और उसमें मंजुलता आ जाती है।

वामनराव के समय के उपन्यास का विचार करने पर यह दिखाई देता है, कि उसमें सैद्धांतिक चर्चा निषिद्ध नहीं थी, बल्कि उपन्यास के माध्यम से तत्वचर्चा के लिए तत्परता को मान्यता और यत्किंचित प्रतिष्ठा भी प्राप्त थी। हरिभाऊ के 'गणपतराव', 'मी', 'यशवंतराव खरे' और श्री. कृ. कोल्हटकर के 'दुटप्पी की दुहेरी' तथा 'श्यामसुंदर' उपन्यासों को पढ़कर यही धारणा बनती है। वामनराव के समकालीन माने जानेवाले डॉ. श्री. व्यं. केतकर के उपन्यासों में चर्चा- प्रकरणों की रेलपेल ही है। इतना सब रहते हुए वामन मल्हार को ही सिद्धान्त चर्चात्मक उपन्यास के जनक का सम्मान क्यों

दिया जाता है? इसका उत्तर यह है कि उनके और दूसरे लेखकों के सिद्धांत चर्चात्मक उपन्यासों में स्तर का अन्तर है। दूसरे लेखकों की चर्चा पाठक को एक विशिष्ट दिशा में ले जाना चाहती हैं। परंतु वामनराव की चर्चा पाठकों पर कुछ लादने की अपेक्षा उन्हें अंतर्मुख बनाती है, विचारों के विविध पहलू स्पष्ट कर देती है। वह उद्देश्यपरक या बोधलक्षी नहीं है। उसका झुकाव प्रबोधन की अपेक्षा उद्बोधन की ओर है। उसमें अनेक प्रश्नों-उपप्रश्नों के तार छेड़े जाते हैं। एक प्रकार से वामनराव के उपन्यास को प्रश्नोपनिषद ही समझना चाहिए।

कथा के अंतर्गत प्रश्नात्मक दार्शनिकचिंतन भारतीय मानस के लिए कोई नई बात नहीं है। भारतीय पुराणों, आख्यानों उपाख्यानों में इसका आधिक्य है। जीवन की विविध जटिल समस्याओं, इनसे उत्पन्न किंकर्तव्यविमूढता, श्रेय और प्रेय संबंधी संशयों को गुरु-शिष्य संवादों की प्रश्नोत्तरी द्वारा सुलझाने की परंपरा बहुत पुरानी है। इनमें स्थलकालादि की वास्तविकता की अपेक्षा समस्याओं की तात्विक गहराई और शाश्वतता का महत्त्व होता है। पुराणों के इस ढाँचे को वामन मल्हारने आधुनिक लेखन में बिठाने का प्रयत्न किया है। इनके 'आश्रम हरिणी' और 'रागिणी' उपन्यासों का ठाट पुराणों जैसा ही है। उसी प्रकृति का आदर्श-विवेचन और प्रश्नोपप्रश्न 'रागिणी' में मिलते हैं। रागिणी के उत्तरार्ध में हिमालय वर्णन, प्रियब्रह्मस्वामी का आश्रम इत्यादि प्रसंग शोभार्थ ही उसमें भरे गए हैं। स्वप्न, आभास, साक्षात्कार, सुभाषित, संयोग इत्यादि अंश भी पौराणिक साँचे से मिलते जुलते हैं। वामन मल्हार ने आरंभ में ऐसा शिल्प भले ही अपनाया हो परंतु उनके उपन्यास का अभिप्राय अतिआधुनिक है। पुराणों के रचनातंत्र के करीब आते 'आश्रम हरिणी' उपन्यास को यह प्रश्न घेरे है कि एक सच्चरित्र नारी एक ही समय दो पतियों के साथ वैध गृहस्थी निभा सकेगी या नही? 1916 में लिखे गए इस उपन्यास में व्यक्त विचार आज के नारीमुक्ति आंदोलन के काल में तहलका मचा सकता है। लेखक ने इसे पचा लिया और चित्ताकर्षक भी बना दिया। यह कौशल विषय के विशिष्ट विन्यास तथा बुनावट द्वारा संपादित किया गया है।

वामन मल्हार सचमुच ही मराठी के एक प्रयोगशील उपन्यासकार थे। विशिष्ट विचारधारा प्रस्तुत करने के लिए वामनराव को नए उपक्रम करना अपरिहार्य हो गया क्योंकि शैली का प्रमुख गुण अपने आशय को प्रभावी तरीके से व्यक्त करना माना जाता है। काल और आशय के अनुरूप, उनके उपन्यासों में, शैली भी स्वाभाविक रूप से बदलती रही है। 'रागिणी' में काव्यशास्त्र विनोद का रंग है, 'आश्रम हरिणी' में पुराणों जैसी गठन है, 'सुशीलेचा देव' में आत्मकथा का विविधतापूर्ण उपयोग है, और 'इंदू काळे—' में पत्रशैली अपनाई गई है। काल की दृष्टि से वामनराव की शैली में परिवर्तन देखना हो तो आरंभ के उपन्यास 'रागिणी' और 'इंदू काळे—' पर सहज ही तुलनात्मक दृष्टि डालना पर्याप्त होगा। 'रागिणी' की रूपरेखा किसी महाकाव्य सरीखी दीर्घ है तो 'इंदू काळे—' की अतिशय सरल- संक्षिप्त है।

आत्मकथन, वामनराव की शैली का महत्वपूर्ण रूप है। 'स्मृतिलहरी' पढ़ने से भी यही पता चलता है। 'आश्रम हरिणी' धौम्य की आत्मकथा ही है। 'इंदू काळे—' में जो पत्र हैं वे उन्ही व्यक्तियों के अर्थात् इंदू, सरला, विनायकराव इत्यादि के विशिष्ट क्षणों के आत्मकथन नही हैं क्या? 'रागिणी' में भी अनेक पात्र लंबे लंबे आत्मकथन करते हैं। वामन मल्हार ने सप्रयोजन यह आभास दिया है कि 'सुशीलेचा देव' उपन्यास सुशीला का आत्मचरित्र है। उन्होंने आत्मकथनपरक निवेदनों के अनेक प्रकारों का उपयोग किया है। उन्हें इन कथनों की आवश्यकता थी क्योंकि इनसे प्रत्यक्ष अनुभव, आत्मचिंतन, ईमानदारी की स्पष्टता, अनौपचारिता, प्रेमभाव, संवादशीलता, निकटता आदि आवश्यक विशिष्टताएँ स्वाभाविक तौर पर साधी जा सकती हैं। विचार मूलतः अमूर्त होता है और उनके उपन्यासों में इसी का वर्चस्व है। आत्मकथापरक शैली के प्रयोग से अमूर्तता की गुरुगंभीरता को हलका करने और उसे रसार्द्र बनाने में सहायता मिलती है। इसीलिए वामनराव के तत्वविचारों की दुरूहता, आत्मकथनों की विनोदमयी शैली अपनाने के कारण, अपनी वह तीव्रता कायम नहीं रख पाती और ललित, मनोरंजक रूप ग्रहण कर लेती है। 'इंदू काळे—' की शैली पत्रात्मक न होती तो उसे आधुनिक सुरूपता प्राप्त न होती। 'आश्रम हरिणी' का क्रांतिकारक आशय चौंकानेवाला नहीं है, रोचक ही है। यह उपन्यास में अपनाई गई शैली का ही परिणाम है। शैली की इस सुघड़ता के अभाव में 'नलिनी' उपन्यास असफल रहा।

'सुशीलेचा देव' उपन्यास में बालसुशीला का चित्रण करते हुए उन्होंने उपन्यास के परम्परागत लक्षणों का उपहास किया है, परंतु उनके उपन्यासों में स्वयं ये परंपरा के चिह्न कभी कभी दिखाई दे ही जाते हैं। उदाहरणार्थ उनमें खलनायक हैं ('रागिणी' के जनभाऊ चकणे और 'इंदू काळे—' के अंतर्गत बिंदुमाधव), बार बार दिख पड़नेवाले, अकस्मात मृत्यु, लुटेरे, आत्महत्या, विषप्रयोग, पिस्तौल, चुड़ैल, इत्यादि भी हैं तो भी वामनराव को ऐसी परंपरा से घृणा थी। यह भावना उनकी विचारश्रृंखला से प्रकट हो जाती है तथा इसका प्रमाण उनकी उपन्यासलेखन शैली से भी प्राप्त होता है। अपनी अलग लेखन शैली का भान उन्हें था और उसे उन्होंने उत्साह से सँवारा था। यह ध्यान में रखना होगा कि उनकी भिन्नता और प्रयोगशीलता केवल दिखावटी नहीं थी, न नवीनता की झक का परिणाम थी। वे जो आशय संपादित करना चाहते थे उसकी आंतरिक अपेक्षा ही उन विशिष्टताओं को प्रेरित करती थी। प्रयोग के लिए प्रयोग या कुछ भिन्न करने की दृष्टि से उन्होंने ये तरीके नहीं अपनाए थे। उनकी शैली में आभिजात्य और स्वाभाविकता के गुण पाए जाते हैं।

अपने उपन्यासों में प्रयुक्त विशिष्ट रचना-तंत्र से वामनराव ने विचार- मंथन की सख्ती को नरम बनाया है, गंभीर विचारों को ललित और मधुर बनाया है। इससे लालित्य में विचारगांभीर्य की कांति आ गई है। इसीलिए यह समझ में आ जाता है कि 'रागिणी' को वामनराव काव्यशास्त्रविनोद क्यों कहते हैं। उनकी रचना में काव्य

का अर्थ भावमधुरता, शास्त्र का अर्थ सैद्धांतिक-दार्शनिक विचारों की अधिकता और विनोद से आशय उल्लासमय क्रीड़ावृत्ति समझना चाहिए। इन्हीं तीन घटकों का मिश्रण उनके सभी उपन्यासों में (नलिनी को अपवाद मानते हुए) प्राप्त होता है जिससे सैद्धांतिक चर्चा 'वेदाभ्यास जड' अर्थात् शुष्क शास्त्रीय स्वरूप की नहीं रह जाती। इसमें यथावश्यक मात्रा में मनोविनोद चुलबुलापन, बहानेबाजी, जैसा बहुत कुछ मिल जाता है। वे रूढ़ अर्थ में विनोदी नहीं थे। ऊँचे दर्जे की विनोदवृत्ति ने उनकी लेखनशैली में लहलहाती ताज़गी भर दी थी।

वामन मल्हार का उपन्यास रचना-काल 1915 से 1935 तक बीस वर्षों का है। उन्होंने 'रागिणी' (1915) 'आश्रमहरिणी' (1916) 'नलिनी' (1920) 'सुशीलेचा देव' (1930) और इंदू काळे व सरला भोळे' (1934) ये कुल पाँच उपन्यास लिखे हैं। 'नलिनी' को छोड़कर शेष सभी पहले पत्रपत्रिकाओं में क्रमशः निकले फिर पुस्तकरूपों में प्रकाशित हुए। 'रागिणी' 1914 से तत्कालीन प्रतिष्ठित 'मासिक मनोरंजन' में क्रमशः प्रकाशित हो रहा था। उसी स्थिति में यह उपन्यास पाठकों में बहुत लोकप्रिय हो रहा था। इस पहले उपन्यास ने ही उपन्यास के क्षेत्र में उन्हें ध्रुव पद (स्थायीस्थान) दिला दिया। उसकाल में (बाद में भी) उनका उल्लेख 'रागिणी' लेखक वा. म. जोशी कहकर किया जाने लगा। 'रागिणी' के तुरंत बाद 'आश्रमहरिणी' उपन्यास 'मराठामित्र' नामक पत्र में क्रमशः छपा। उनके पाँच में से चार उपन्यास इसी तरह क्रमशः प्रकाशित हुए। ये हफ्ते हफ्ते छपते थे। लगता है इस खंडशः प्रकाशन का थोड़ा बहुत असर उनकी लेखन पद्धति पर हुआ। यह असर 'रागिणी' पर सबसे अधिक दिखता है। रचना-शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास दोषपूर्ण है। फिर भी उसकी आंतरिक सुन्दरता ने तत्कालीन पाठकों को मोह लिया। सामान्य पाठकों से लेकर साहित्याचार्य श्रीपाद कृष्ण तक सभी ने इस उपन्यास को बहुत सराहा। 'रागिणी' के रसान्वित चरित्र - चित्रण, मोहक वातावरण और सर्वस्पर्शी नवविचारों के प्रस्तुतीकरण ने उन्हें यह यश दिलाया। इस उपन्यास का काल और विस्तार देखते हुए इसे बृहत् उपन्यास कहना ही अधिक उचित होगा। उपन्यास को प्रायः गद्य के रूपमें महाकाव्य (Epic in prose) कहा जाता है। 'रागिणी' का समग्र रूप इस संबोधन के योग्य ही है। इसे तीन खंडो में विभाजित किया गया है। प्रत्येक खंड में लगभग 25 प्रकरण हैं। कुल प्रकरणों की संख्या, उपन्यास विधा की दृष्टि से अधिक लगती है। इस उपन्यास का बाह्य आकार अस्तव्यस्त है। इसमें पात्र, स्थल, काल का विस्तार बहुत बड़ा है। कथानक में उपकथानकों का प्रवेश भी है। इनके अतिरिक्त, सुभाषित, चर्चा, स्वप्न आभास, साक्षात्कार, प्रकृतिवर्णन, हिमालयदर्शन, ऋषियों के आश्रम, जंगली कबीले इत्यादि का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। यह सब होते हुए भी उसकी संकल्पना, आंतरिक रचना, चरित्रचित्रण, विचारों की दिशा में एक संगति है, सूत्रबद्धता है। इस उपन्यास के अध्यायों के शीर्षक यद्यपि 'नगाधिराज हिमालय', 'रम्य औदासीन्य', 'सन्मित्राचा सत्कलह', 'दैवाचा घाला'

(नियति का संकट) परंपरागत अलंकारिक शैली के प्रकरण-वस्तु सूचक प्रतीत होते हैं, किन्तु इस उपन्यास का आशय और निरूपण की प्रकृति आधुनिक महाराष्ट्र के वैचारिक आन्दोलन की आनुषंगिक स्थिति और हलचल प्रतिबिंबित करती है। इस उपन्यास की रचना प्राचीन खोल में आधुनिक गिरी जैसी हो गई है।

'रागिणी' के पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्र अधिक ध्यान देने योग्य हैं। नवशिक्षित नारी के मन को समझने का जो प्रयत्न वामन मल्हार ने किया है, वह दूसरे (डॉ. केतकर के उपन्यास को छोड़कर) उपन्यासों में नहीं मिलता। 'हिन्दू सेफरेजेट' शीर्षक 'रागिणी' का पहला अध्याय ही ध्यान देने लायक है। आरंभ में ही टेनिसन की ये काव्यपंक्तियाँ आती है 'The old order changeth giving place to new.' पुरानी व्यवस्था हटकर नयी व्यवस्था को स्थान देती है। इस पंक्ति से ही यह पता चल जाता है कि उपन्यास जीवन की गतिशीलता को दर्शानेवाला है। इस उपन्यास के मुख्य नारी एवं पुरुषपात्र सहृदय, विचारप्रवण, परिपक्व मन के, ज्ञानपिपासु हैं। नानासाहेब, भाऊसाहेब, शास्त्रीबुवा जैसे पुरानी पीढ़ी के, या भैय्या साहेब आनंदराव जैसे नई पीढ़ी के पात्र उच्च बौद्धिक वातावरण में रुचि रखनेवाले लोग हैं। उत्तरा और रागिणी, इन दो युवतियों के मनों में भी नई वृत्ति, जीवन के नए अर्थ का प्रादुर्भाव हो गया है। वामन मल्हार के पिछले उपन्यासों में नारी आम तौर पर घरेलू, अंग्रेजी शिक्षा के संस्कारों से अलिप्त तथा पुरूषों के साथ खुलकर चर्चा करने में असमर्थ थी। 'रागिणी' में पहली बार 'नई नारी' के दर्शन होते हैं। उसमें युवतियाँ पुरुषों के साथ सैर करने जाती हैं, उनसे घनिष्ठ बौद्धिक चर्चा करती हैं, कभी कभी वादविवाद में उन्हें परास्त भी कर देती हैं। उनमें साहसपूर्ण परिपक्वता है, और वे पर्याप्त आज़ाद तबियतवाली हैं।

'रागिणी' उपन्यास में 'रागिणी' तथा उत्तरा, ये दो प्रमुख पात्र हैं। उन्हीं के जीवन पर यह उपन्यास आधारित है। इनके स्वभाव सतह पर भिन्न हैं परन्तु दोनों का ही प्रगल्भ विकसित मन है। सुशिक्षित, सुसंस्कृत और स्वतंत्र विचारोंवाली ये दो लड़कियाँ और इनका दो तरह का पारिवारिक परिवेश, यही उपन्यास की मुख्य धारा है। तत्कालीन सुशिक्षित पाठकों ने 'रागिणी' और 'रागिणी' के लेखक को लोकप्रियता के शिखर पर ला बिठाया था। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर ने इस उपन्यास की सराहना करते हुए कहा था कि "प्रत्येक रसिक का उद्गार यह होगा- इस उपन्यास का रसास्वादन करने के बाद मुझे रागिणी' की संगति गंगा जैसी, साधु की संगति, कवि (ऋषि) की संगति जैसी पावन प्रतीत होती है।"

'रागिणी' के बाद वामन मल्हार का दूसरा उपन्यास 'आश्रम हरिणी' आया। इन दोनों का शिल्प और आकार बहुत भिन्न है। 'आश्रम हरिणी' की रचना अत्यंत व्यवस्थित और असाधारण रूपसे सुघड़ है। एक दुर्लभ ग्रंथ हमारे हाथ लगा है, ऐसा भ्रम उत्पन्न करने या चकमा देने का खेल, वामनराव ने आरंभ से अन्त तक बड़ी होशियारी से

खेला है। इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण, वातावरण, भाषा शैली वही रखने का भरसक प्रयास किया है जो किसी पुराणग्रंथ को शोभा देते हैं। इसके पहले बताया जाचुका है कि इस उपन्यास का आवरण तो प्राचीन है परन्तु आशय या हेतु, असाधारण रूप से नया और उत्तेजक है। वामनराव, प्राचीन काल का आभास देकर ही नया चौकांनेवाला अभिप्राय, अपने पाठकों को स्वीकार्य बना सके।

'आश्रमहरिणी' में सुलोचना के दोपतियों की पत्नी होने के संबंध में प्रश्न उपस्थित होता है। द्विपतिकत्व का समर्थन व्यक्त करनेवाला उपन्यास लिखकर वामन मल्हार ने अपने पाठकों के मनों में एक क्रांतिकारी विचार लाकर छोड़ दिया। इस उपन्यास के माध्यम से पाठकों के सोचने के लिए उन्होने ऐसे बुनियादी सवाल उठाए - "विवाहसंबंधी स्त्रीधर्म क्या है? या "क्या ईश्वर ने स्त्री को पुरूष के सुख के लिए ही बनाया है?" "क्या उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है?"

'आश्रम हरिणी' के प्रथम संस्करण में गभस्तिगती और सुलोचना की मृत्यु साँप के काटने से हुई बताकर, वामनरराव ने सुलोचना के द्विपतिकत्व का प्रश्न टाल दिया था। परन्तु आगे के संस्करण में उन्होंने साहस से यह मृत्यु की घटना निकाल दी और यह दिखाया है कि सुलोचना के साथ धौम्य और गभस्तिगती, उसके दोनो पति शांति से, आनंद से, अपना शेष जीवन क्रमशः उन्नति करते हुए बिताते हैं। वामनराव ने स्वीकार किया है कि प्रथम संस्करण के समय मुझमें यह साहस न था। यह आत्मस्वीकृति उनकी ईमानदारी की परिचायक है।

'आश्रम हरिणी' की श्रेष्ठता के विषय में कुसुमावती देशपाण्डे ने लिखा है - 'पूर्ण विकसित कथानक, स्वभाव चित्रण, कथा की प्रकृति से निर्मित तथा उससे एकात्म हुए वातावरण जैसे शिल्प के अंशो की दृष्टि से वह एक स्वयंपूर्ण और सफल उपन्यास है। आश्रम के वातावरण का निर्माण करने में, धौम्य, गभस्तिगती आदि बालगोपालों की लीला के वर्णन में, उनकी बढ़ती उम्र के प्रश्न उपप्रश्न उपस्थित करने में, वामन मल्हार का मन तल्लीन हो उठता है। इसके लिए उन्होंने न्यारी ही शब्द कला का प्रयोग किया है, निराला बिम्बविधान, भाषा और अलंकारों का सहारा लिया है तथा आरंभ से अंततक इस निरालेपन को कायम रखा है। —इसका आनंदप्रद और दूरस्थ वातावरण मन मोह लेता है।—इस रचना में यथार्थ से कल्पना पलायन नहीं करती बल्कि वहाँ यथार्थ और कल्पना का कमनीय संगम होता है। कल्पना के प्रकाश में वास्तविकता अधिक स्पष्ट होकर निखर आती है और वास्तविकता के स्पष्ट हो जाने से कल्पना में निहित अर्थ परिपूर्ण हो जाता है।'

'नलिनी' उपन्यास 1920 में प्रकाशित हुआ। परन्तु पूर्व प्रकाशित दोनों उपन्यासों की तुलना में इसका गठन और आशय दोनों ही कमजोर और फीके लगते है। रचनाकार ने स्वयं उसे 'नकटी' कहा है। इस उपन्यास में वामनराव की कलाप्रतिभा कहीं नज़र नहीं आती। अतः इस असफल कृति की समीक्षा छोड़कर कलासम्पन्न दो उपन्यासों

('सुशीलेचा देव' 'इंदू काळे आणि सरला भोळे') पर विचार करना उचित होगा। 'सुशीलेचा देव' उपन्यास वामनराव की वैचारिक गतिशीलता की छलांग प्रदर्शित करता है तो 'इंदू काळे आणि सरला भोळे' उनकी नवशोधक तकनीक का साक्ष्य देता है। 'रागिणी' और 'आश्रम हरिणी' के संबंध मे समीक्षा की जो पद्धति अपनाई थी वही इन उपन्यासों के संबंध में भी अपनाई गई है। आशय की दृष्टि से 'रागिणी' सम्पन्न है परन्तु अभिव्यक्तिकी दृष्टि से वैसे, अपरिपक्व है। इसकी तुलना में 'आश्रम हरिणी' बहुत सरस लगती है। 'सुशीलेचा देव' की 'इंदू काळे—' से ऐसी ही तुलना की जा सकती है।

केवल आशय की दृष्टि से विचार किया जाए तो 'सुशीले चा देव' की वैचारिक छलांग बहुत ऊंची दिखाई देती है। सुशीला ही इसकी नायिका और केन्द्रीय पात्र है और उसकी वैचारिक क्रांति इस उपन्यास का केन्द्रबिन्दु है। बाल्यावस्था से लगाकर सुशीला का मानसिक विकास किन व्यक्तियों और घटनाओं के कारण क्या रूप लेता रहा, पाषाण को ही भगवान मान बैठनेवाली बालसुशीला, प्रौढ़ावस्था में 'ध्येय हाच देव' क्यों मानने लगी, इसकी विशद चर्चा इस उपन्यास में की गई है। उपन्यास का घटनाक्रम भी कुछ कुछ मनमाना और ठप्पाठोंक (काष्ठवत्) हो गया है। रावजी और सुशीला में परस्पर प्रेम भावना का उदय, रावजी के लिए सुशीला द्वारा रची गई गृहस्थी और रावजी की मृत्यु के बाद गृहस्थी का अंत, यहाँ तक का भाग लक्ष्यसिद्धि नहीं करता। केवल इससे अगला भाग विशेष ध्यानाकर्षक है जिसमें रावजी की मृत्यु के बाद सुशीला के मन की उथल-पुथल और विश्वकुटुंबवाद तक यात्रा का चित्रण किया गया है। ध्येय ही देव है, यह तो वामनरावने अपने पूर्वोल्लिखित निबंध में स्थापित किया ही था, इसी विचार को उन्होंने एक बार फिर इस उपन्यास में दोहराया है। अन्त में यह निदर्शित किया है कि इस विचार की आधुनिक परिणति विश्वकुटुम्बवाद में होना अपरिहार्य है। इसीलिए अभिव्यक्ति की अपेक्षा उद्देश्य की दृष्टि से यह उपन्यास सशक्त और महत्वपूर्ण है। इसमें विचार देशकाल जातिधर्म के क्षितिजों को लांधकर उसपार जा पहुँचता है। पहले के उपन्यासों की अपेक्षा इस उपन्यास में वातवारण भी बदला हुआ मिलता है। इसके अधिसंख्य पात्र दूसरे उपन्यासों के पात्रों जैसे, परिपक्व विचारोंवाले, सुसंस्कृत स्वभाव के, बहस में निपुण हैं। परंतु उनके समान वे मध्यमवर्गीय सुशिक्षितों की दुनियाँ तक ही सीमित न रहकर निम्नवर्गीय स्तर की ओर भी ध्यान देते हैं। इसका प्रमाण उपन्यास के 'ही आमची समाजव्यवस्था' (यह हमारी समाजव्यवस्था) शीर्षक अध्याय में मिल जाता है। इसमें सुशीला का वर्तमान स्थिति के विषय में क्षोभ, उपन्यासकारने इन शब्दों में व्यक्त किया है- "उपन्यास और नाटकों में प्रेम के सिवाय दूसरा विषय ही नहीं मिलता; राजनीतिज्ञों को स्वराज्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता; समाजसुधारक विधवाविवाह, स्त्रीशिक्षा, ब्राह्मण और अन्यजातियों से संबंधित विषयोंपर ही सोचते हैं। गरीब महार-अस्पृश्य डोम-मेहतरों की स्थिति क्या है, ऐसी क्यों है इसे सुधारने के विषय में कोई विचार नहीं करता। सारा समाज गल गया

है, सड़ गया है, rotten हो गया है।'' ये उद्‌गार तो हैं सुशीला के, परन्तु उसके माध्यम से उपन्यासकार ने अपने ही विचार व्यक्त किए हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि लेखक के विचारों का क्षितिज किस तरह विस्तृत होता गया है और इस बात की कल्पना भी हो जाती है कि 'सुशीलेचा देव' में ध्येयवाद के साथ जीवन के यथार्थ की कठोरता कैसी घुलमिल गई है।

'इंदू काळे आणि सरला भोळे' वामनराव का अन्तिम उपन्यास है। या यों कहा जा सकता है कि उपन्यास क्षेत्र में यह मौसम का आखिरी फल है। इसके द्वारा उन्होंने मराठी में पत्रात्मक उपन्यास की नींव रखी, इतना ही नहीं अग्रणी होने का सम्मान भी प्राप्त किया। उपन्यास क्षेत्र में कला की दृष्टि से इस उपन्यास को सर्व श्रेष्ठ माननेवाला विशाल पाठक समुदाय है। वामनराव की प्रसिद्ध कृतियों मे 'आश्रम हरिणी' के बाद इसी उपन्यास का नाम लेना होगा। इसका स्वरूप पत्रों के संकलन का है और उन्होंने इस शिल्प का बड़ी चातुरी से उपयोग किया है पहले के उपन्यासों में कहीं कहीं मिलनेवाले स्थूल वर्णन और निवेदन के अंश इस उपन्यास में कतई नहीं हैं। एक दूसरे से प्रेम करनेवाले स्त्री पुरूषों का पत्रोंद्वारा किया गया परस्पर संवाद, विचार विनिमय, व्यक्त की गई भावनाएँ, बताए गए सुख-दुख ही इसका रचना-प्रकार है। पत्र शैली ने इस उपन्यास में आए निवेदनों को स्वाभाविक, सीधा-सच्चा और अनौपचारिक बना दिया है। पत्र तो वास्तव में एक प्रकार के आत्मकथन ही होते हैं इसलिए उनमें आत्मकथन की विश्वसनीयता भी आजाती है। यही पत्रात्मक शैली की विशेष उपलब्धि है। उपन्यास में सभी तरह के उद्देश्यों के लिए यह शैली उपयुक्त नहीं होती। परंतु वामन मल्हार अपने उपन्यास के माध्यम से जो दार्शनिक चर्चा करना चाहते थे, जिन प्रश्नोपनिषदों की मीमांसा करते हुए हल खोजना चाहते थे, उनके लिए पत्रशिल्पविधान बहुत ही अनुकूल सिद्ध हुआ। यह उपन्यास बहुत छोटा है। कुल मिलाकर इसमें साठ पन्ने हैं। किन्तु कथानक में वर्णित कालखंड बहुत ही लम्बा अर्थात् 1919 से 1934 तक है। महाराष्ट्र की विचार-यात्रा की दृष्टि से यह समय महत्वपूर्ण है। यह दौर पहले महायुद्ध का अन्त, तिलक युग का अस्त, महात्मा गांधी का उदय, सत्याग्रह, कानून की अवज्ञा इत्यादि आन्दोलन, मार्क्सवादी विचारों का आरंभ, बहुजन समाज में जागृति, ब्राह्मण-अब्राह्मण विवाद, तिरंगा नवमतवाद, कला के प्रति नई आस्था उससे संबंधित कलानीतिवाद, स्त्रीपुरुष संबंध विषयक नई समस्या, नई नीति इत्यादि से आक्रांत था। इन सभी की प्रतिध्वनि थोड़ीबहुत 'इंदू काळे आणि सरला भोळे' उपन्यास में गूँज उठती है। उपन्यास का मुख्यपात्र है विनायकराव भोळे। बहुत बुद्धिमान परन्तु त्यागी मनोवृत्ति का है। यह तरुण जीवन की सुख-सुविधाओं को ठोकर मारकर महात्मा गांधी द्वारा आरंभ किए गए आन्दोलन में शामिल हो जाता है। जेल भी भोगता है। जेल से छूटने पर एक आश्रम स्थापित करके सार्वजनिक कार्य करने का निश्चय करता है। इसमें उसे अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है फिर आकस्मिक मृत्यु के कारण

विनायकराव के सारे मनोरथ अधूरे ही रह जाते हैं। विनायकराव की पत्नी सरला उसका काम सम्हालती है और पति के अनुष्ठान को आगे बढ़ाती है। वामन मल्हार के उपन्यासों के सभी नायकों की तरह यह भी अति बुद्धिमान, सुसंस्कृत मनवाला, संवेदनशील, ज्ञान पिपासु और संभाषण कुशल तरुण है। उपन्यास में सभी लोगों का इसके प्रति आदरभाव है। सभी लोग तरह तरह के सरोकारों से अपने मन की भावनाएँ, उसे पत्रों में लिख भेजते हैं। विनायकराव भी उन्हें तत्परता से सहानुभूतिपूर्ण उत्तर देता है। इसी तरह सारे उपन्यास में, उससे सभी की भावनाएँ और विचार प्रकट होते रहते हैं। यह उपन्यास भावनाओं, कल्पनाओ विचारों संकल्प- विकल्पों भरा एक केनवास ही है, और पाठकों के लिए खासी विचार- सामग्री प्रदान करता है।

परन्तु 'सुशीले चा देव' के समान 'इंदू काळे आणि सरला भोळे' क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत नहीं करता। उसमें आदर्श से अधिक जीवन का यथार्थ और उसका दुखद अंत ही पढ़ने को मिलता है। वामनराव के दूसरे उपन्यासों में दु:ख की इतनी गहनता नहीं है। 'ध्येये म्हणजे (अर्थात्) दु:खें' जैसे वाक्य या 'देशभक्त मेला (मर गया)— शाळेला सुट्टी (छुट्टी)' जैसी घटनाएँ जीवन की कठोर वास्तविकता बता कर, उसका अनुभव कराकर, हमें आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करती हैं और इसी में इस उपन्यास की सफलता है।

कुछ समीक्षकों ने इस उपन्यास पर कलानीतिवाद के संदर्भ में भी विचार किया है। कलानीतिवाद का प्रश्न इंदू काळे के विषय में उत्पन्न होता है। परन्तु इसे गौण ही मानना चाहिए। मुख्य प्रश्न तो स्वधर्म के विषय में है। यह प्रश्न वामनराव ने अपने प्रत्येक उपन्यास में उठाया है, अपने अन्य लेखों मे भी इसी पर चर्चा की है। आलोच्य कृति में लेखक ने यह धारणा व्यक्त ही है कि अगर ध्येय का अर्थ दुख भी हो तो इस दुख से उदात्त आनंद प्राप्त होता है। सब को समझ लेना अर्थात् सब को क्षमा कर देना। (To understand all is to pardon all) प्रस्तुत उपन्यास में उनका यह दूसरा सूत्र उच्चतर आनंद का ही समर्थक है।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र विनायकराव के माध्यम से वामन मल्हार ने अपना दार्शनिक चिंतन प्रस्तुत किया है। शेष उपन्यासों में नारी के मन का उद्घाटन करने पर अधिक ध्यान दिया है। नई शिक्षा से जिस नारी का उदय हुआ है उसकी नवीन भावना, नई कल्पना, नए विचारों को वामनराव ने अपने उपन्यासों के जरिए विविध स्तरों पर प्रस्तुत किया है अत: ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने 'नई स्त्री' को जन्म दिया। इस स्त्री में उन्होंने नए और पुराने में सुन्दर समन्वय स्थापित किया है। इस कार्य में भारतीय परंपरा का अनुसरण करते हुए वामन मल्हार ने भोग की अपेक्षा त्याग को, विलास की अपेक्षा करुणा को अधिक महत्व दिया है। वामनराव के हृदय में समस्त नारीजाति के प्रति अतिशय आदर और स्नेह है। यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि संभवत: हिंगणा की स्त्रीशिक्षा संस्था से लम्बे समय तक जुड़े रहने के कारण

उन्हें नई नारी के मन का अधिक प्रामाणिक परिचय प्राप्त हुआ। 1915 से 1935 तक की नई नारी की मानसिकता को समझने के लिए वामनराव के उपन्यासों की दुनियाँ में भ्रमण करना अत्यंत आवश्यक है। और फिर जिसे इस कालावधि में सुशिक्षित मराठी मन के स्पंदन अंकित करने हो, उसे वामन मल्हार के उपन्यासों का अन्वीक्षण करना होगा। मराठी के सांस्कृतिक क्षेत्रों में वामन मल्हार की अनन्य प्रतिष्ठा है। डॉ. केतकर ने वामनराव के समान मराठी जीवन में परिवर्तन की ओर जो ध्यान दिया वह भी महत्वपूर्ण है, परंतु केतकर समाजशास्त्री हैं। वे शास्त्रीय (वैज्ञानिक) दृष्टिसे जीवन की सारी गतिविधियों को देखते हैं। इसके विपरीत वामन मल्हार सहृदय तत्वचिंतक हैं इसलिए उनकी रचनाओं में अनुभूति की प्रधानता है।

उपन्यासकार के रूप में वामन मल्हार का उदय हरिनारायण आपटे के बाद के समय में हुआ। वामनराव के पूर्व मराठी उपन्यास का यथार्थवादी प्रतिमान हरिभाऊ के उपन्यासों द्वारा तय किया जा चुका था। हरिभाऊ ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन मध्यमवर्गीय परिवार व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों को चित्रित करने का उपक्रम किया था। उन्होंने अपनी कृतियों में जो प्रश्न उठाए थे वे नवजागृत समाज के आरंभकाल में भी विद्यमान थे। वामनराव के समक्ष जो मध्यम वर्ग था, वह अगली पीढ़ी का आर्थिक शैक्षिक सुविधाप्राप्त, उच्चतर सांस्कृतिक स्तर का था। उनके उपन्यासों की नारी हरिभाऊ के उपन्यासों की तुलना में अधिक प्रगतिशील हो गई थी। वह संयुक्त परिवार व्यवस्था की जकड़, अशिक्षा और असंस्कारिता से मुक्त हो चुकी थी। आचार-विचार की दृष्टि से उसमें स्वतंत्रता आ गई थी। उसमें समता की भावना के साथ आगे बढ़ने की आकांक्षा थी। किंतु समाज में इस प्रकार की स्त्रियों की संख्या बहुत कम थी। पर अपवाद स्वरूप ही सही, एक नई स्त्री का आविर्भाव हो रहा था और वह वामन मल्हार के उपन्यासों से अपने आगमन की घोषणा कर रही थी।

शिल्प की दृष्टि से भी वामन मल्हार, अपने से पहले के तथा समकालीन उपन्यासकारों से आगे बढ़ गए थे। आत्मकथन की शैली उनकी विशिष्टता थी। यह बात नहीं कि आत्मकथन की शैली का पहला श्रेय उन्ही का है। इनसे पहले बावा पदमनजी लिखित 'यमुनापर्यटन' पहले मराठी उपन्यास में, बाद में हरिभाऊ के प्रथम श्रेणी के मानेजानेवाले उपन्यास 'पण लक्षात कोण घेतो' (पर ध्यान कौन देता है) में भी यही शिल्प अपनाया गया है। तो, इन तथ्यों को सामने रखते हुए यह प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है कि वामन मल्हार के आत्मचरित्रपरक शिल्प की क्या विशेषता है? इस विशेषता को दो प्रकार से दर्शाया जा सकता है। एक तो वामन मल्हार ने आत्मकथन के विविध प्रकारों को विविध पद्धतियों से सँवारा। (उदा० पोथी, आत्मचरित्र, पत्र, तारा इत्यादि से)। दूसरा उन्होंने आत्मलेखन को अंतर्मुख रूप दिया। इस तरह उन्होने हरिभाऊ की ही परंपरा को समृद्ध किया। फड़के युग में तो यह पिछड़ गई थी किंतु आज वह फिर नए सिरे से आगे आती हुई दिख रही है। भालचंद्र नेमाडे लिखित 'कोसला',

'बिढार', 'जरीला', 'झूल' इसके प्रमाण हैं। वामनराव के उपन्यासों की तरह नेमाडे के उपन्यासों में भी आत्मकथन और संवादप्रियता, परिपक्वता, निपुणता, विश्लेषणवृत्ति, दार्शनिकता इत्यादि उपलब्ध होती हैं। वामन मल्हार की विरासत को समृद्ध करने के लिए सक्षम नई पीढ़ी आगे आरही है। यह पीढ़ी वामनराव का अनुसरण करे या न करे उसे कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण करना पड़ेगा। यही न्यायसंगत होगा।

4.
समीक्षक वामन मल्हार

प्रथम श्रेणी के साहित्य समीक्षक से अपेक्षित सारे विशेष गुण वामन मल्हार में एकत्र संचित थे। उन्होंने जो भी समीक्षा की है, उसमें उनकी साहित्य के प्रति प्रगाढ़ आस्था, सुरुचिसंपन्नता, बहुश्रुतता, मर्मज्ञता, सहृदयता, परिपक्व सौंदर्यदृष्टि, न्यायबुद्धि प्रकट होती है। वे नए और पुराने को समान रूप से स्वागतार्ह मानते हैं। स्वभाव से तत्वचिंतक होने के कारण वे साहित्यिक रचना पर मूलग्राही पद्धति से अर्थात् बुनियादी तहों तक पहुँचकर विचार करते हैं। उससे संबंधित कुछ नए सवाल उठाते हैं और पुराने सवालों के उपेक्षित पहलुओं पर ध्यान देते हैं। आग्रहमुक्त, स्पष्ट, जिज्ञासु और रसिक वृत्ति के फलस्वरूप उनकी समीक्षा जितनी उद्‌बोधक होती है उतनी ही रोचक भी। साहित्य समीक्षाएँ अधिकांश स्वान्तःसुखाय की गई हैं। अपनी साहित्य विषयक समझ को, अपनी समीक्षाद्वारा अधिकाधिक जानने के उद्देश्य से ही वे इस कार्य में प्रवृत्त होते हैं। इसीलिए वामनराव की समीक्षा में खंडन मंडन का परिमाण कम है। जो भी है वह मुख्यतः कलानीति या कला-जीवन सरीखे विषयों के प्रसंग में है। उनके समय में ये विषय बहुचर्चित हो गए थे (इनकी गूंज 'इंदू काळे आणि सरला भोळे' उपन्यास में भी सुनाई देती है)। कलानीतिवाद के अंतर्गत नीति के पक्ष को ऊँचा उठाकर वामनराव ने उसे ही प्रधान बना दिया है। इसलिए उन्हें इस विषय में बार बार और जोर देकर लिखना पड़ा है। वे स्वयं अपने समय के विख्यात सृजनशील लेखक थे। अतः उनके समीक्षात्मक लेखन में आत्मविश्वास का भी कुछ अंश रिस आया है। नए पुराने सभी लेखक उनकी समीक्षा के लिए विशेष उत्सुक रहते थे क्यों कि उनमें पूर्वकालीनों के प्रति आदरभाव, समकालीनों के लिए स्वागत भावना के कारण ही मराठी कविता के नए युग के निर्माता बा. सी. मर्ढेकर ने भी अपनी पहली- पहली समीक्षात्मक पुस्तक ('वाङ्मयीन महात्मता'ला) की प्रस्तावना लिखने के लिए वामनराव को ही चुना।

श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर और न. चि. केळकर, वामन मल्हार के समकालीन प्रसिद्ध समीक्षक थे। ना. सी. फडके, वि. स. खांडेकर तथा ग. त्र्यं. माडखोलकर वामन मल्हार के समय के तो थे पर यह बाद में उभरी समीक्षकों की नई पीढ़ी थी। इन नई और पुरानी दोनों ही पीढ़ियों की समीक्षा से वामन मल्हार का तालमेल रहा है किंतु कोल्हटकर और केळकर समकालीन होने के कारण अधिक निकट थे। वामनरावने इन दोनों की

साहित्यिक कृतियों की समीक्षा भी की है। कोल्हटकर की साहित्य समीक्षा मुख्यतः विश्लेषण प्रधान है, और केलकर की आस्वाद प्रधान। वामनराव में इन दोनों विशिष्टताओं का संतुलन मिलता है। कोल्हटकर एवं केलकर के लिए तो साहित्य ही उपजीविका रहा है परंतु वामन मल्हार के लिए वह उतना नहीं रहा। उन्हें जीवन की गतिविधि और विचारविमर्श में अधिक आनंद आता था। इस कारण उनके साहित्य-चिंतन में अधिक गहराई आ गई है। वामन मल्हार के बाद के समय में, समीक्षा में शिल्प (तकनीक) का वर्चस्व होने लगा था। वामन मल्हार ने स्वयं अपने उपन्यासों में अनेक शिल्पविधियों से नए नए प्रयोग किए हैं। फिर भी साहित्य में शिल्प या तंत्र के प्रयोग के संबंध में तंत्रवाजी में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रही। वे साहित्य में मंत्र (साधना) की ओर अधिक आकृष्ट हुए। कलाकार के विशिष्ट व्यक्तित्व और उसका निर्माण करनेवाले प्रयोजन को उन्होंने अधिक महत्त्व दिया है। किंतु तंत्र की पूर्ण उपेक्षा भी उन्हें मान्य नहीं थी। इसीलिए उन्होंने केतकर के उपन्यासों पर आक्षेप भी व्यक्त किया है। उनका आग्रह था कि सत्य चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण हो, साहित्य में अभिव्यक्त होने पर वह ध्यानाकर्षक, कमनीय, साभिप्राय बन जाना चाहिए। कला में वाद का प्रचार करने की मनाही नहीं है पर शर्त यह है, इस काम में कला के नियमों का पालन अवश्य होना चाहिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वामन मल्हार समीक्षा में कला और जीवन के बीच संतुलन बनाए रखना चाहते थे। फिर भी उनकी समीक्षाओं को पढ़ने से पता चलता है कि इनमें कलावाद की अपेक्षा जीवनवाद को अधिक प्रश्रय मिला है। उनका कलानीति का सिद्धांत भी इसी सिलसिले में विकसित हुआ है। उनके मतानुसार, कलाकृति की समीक्षा में कलाकार के व्यक्तित्व का अधिक महत्व होता है। कलाकार की महत्ता इस बात पर निर्भर होती है कि मन की गहराई, परिपक्वता, विवेकशीलता, मार्मिकता इत्यादि का बोध उसकी कलाकृति से कितनी तीव्रता से प्रकट होता है।

'वाङ्मय-कला विषयक माझी दृष्टि' (साहित्यकला संबंधी मेरी दृष्टि) शीर्षक लेख से वामन मल्हार की साहित्य की भूमिका स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है। उन्होंने लिखा है - "कला और साहित्यकला का मैं भक्त अवश्य हूँ, किंतु अनन्य भक्त नहीं हूँ। मैं यह कभी भुला नहीं सकता कि मनुष्य का जन्म केवल कला का आनंद लूटने के लिए नहीं हुआ। यह ठीक है कि कला के अभाव में मनुष्य जीवन में बड़ी कमी का अनुभव होगा परंतु जीवन केवल कलात्मक नहीं होता, जीवन में जो रम्य और वंदनीय है उसमें कला के साथ साथ नीति और सत्य का समावेश होना चाहिए। यदि इनमें परस्पर मेल न हुआ तो इसे जीवनमें बहुत बड़ा संकट मानना चाहिए।" इसी विचार से, साहित्य संमेलन के अध्यक्षपद से उन्होंने साहित्यकारों को संबोधित करते हुए कहा था - "असत्य, दुर्जनता और हरतरह की कुरूपता का विनाश करना तथा सत्य, सौजन्य एवं सौंदर्य के संस्थापन का संकल्प करना आपके आविर्भाव का कर्तृत्व है।" वामन मल्हार के साहित्य विषयक विचार आदर्शवादी होते हुए भी यथार्थवाद

या सौंदर्यवाद के प्रतिकूल नहीं थे। बल्कि उनके सैद्धान्तिक विचारों में, व्यक्ति की महत्ता और उसकी स्वतंत्रता, असांप्रदायिकता तथा नवीनता के प्रति प्रेम व्यक्त हुआ है, अतः वे सौंदर्यवादी भी कहे जा सकते हैं। उन्हें जीवन के यथार्थ का भी ज्ञान था जिसकी प्रतीति 'ही आमची समाजव्यवस्था', 'सुशीलेचा देव' उपन्यास के अध्याय और 'इंदू काळे व सरला भोळे' के अंतिम भाग से हो जाती है।

वामन मल्हार की साहित्य-समीक्षा के दो भाग किए जा सकते हैं; सिद्धांत और अनुप्रयोग। उनकी समीक्षा स्फुट रूप की है और मुख्यतः 'विचार सौंदर्य' के लेखसंग्रह और 'विचार विहार' के साहित्य संबंधी सैद्धांतिक विचारों में इन विषयों का समावेश होता है। साहित्य की प्रवृत्ति और ध्येय, साहित्य कालनिष्ठ या व्यक्तिनिष्ठ? मतप्रचार और कला, शिक्षात्मक या मात्र मनोविनोदात्मक, आजकल महाकाव्य क्यों नहीं लिखे जाते? आत्मनिष्ठा और आत्माभिव्यक्ति, कलाकृति, पाठकसुखाय या स्वान्तःसुखाय? काव्यानंद मीमांसा, एरिस्टॉटल के 'कथार्सिस' की व्याख्या, कला और नीति, कला और नीति का संबंध, साहित्य के महत्व के कारण।

वामन मल्हार के साहित्य संबंधी विचार संस्कृत साहित्य शास्त्र की अपेक्षा पाश्चात्य साहित्यशास्त्रपर अधिक आधारित हैं। उनमें आधुनिक ज्ञानविज्ञान, मनोविज्ञान का सहारा लिया गया है। वामन मल्हार ने मुख्यतः गद्यसाहित्य की ही समीक्षा की है। उनके समय की समीक्षा अधिकतर काव्य पर केंद्रित थी और संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार की जाती थी। इस पृष्ठभूमि में वामन मल्हार की समीक्षा की आधुनिकता अधिक ध्यान आकर्षित करती है। साहित्य-चर्चा की उनकी परिभाषा भी आधुनिक है। वह नवमनोविज्ञान से प्रभावित है।

वामन मल्हार आम तौर पर जीवनवादी माने जाते हैं परंतु उनके जीवनवाद में कला का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। सौंदर्य के महत्व को समझाते हुए वे कहते हैं कि वह अस्तित्व की रागात्मक क्रीड़ा और आत्मसिद्धि (self-realisation) के प्रमुख अंगों में से एक है। कलायोगी, ज्ञानयोगी की उच्चस्थिति तक पहुँच सकता है क्योंकि आत्मातीत और आत्मरत वृत्तियाँ दोनों ओर सक्रिय होती हैं।

वामन मल्हार ने काव्य के आनंद की अपनी मीमांसा स्वतंत्र रूप से नहीं की है अपितु न. चि. केळकर की काव्यानंद मीमांसा की सविकल्प समाधि की कल्पना से नाता जोड़ते हुए निर्धारित की है। केळकर की काव्यानंद के संबंध में अपनी निराली भूमिका यह थी कि 'अपना स्थान न छोड़ते हुए जहाँ बैठ गए हैं वहीं दूसरी भूमिका का आनंद लिया जाए।' केळकर की सविकल्प समाधि का यह सारतत्व है। वामन मल्हार ने केळकर के इस रुख पर बहुत छींटा-कशी की है और काव्यानंद की निष्पत्ति में 'कारणानाम् अनेकता' को घटक रूप में प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार ये उपादान हैं - कवि और हमारे अनुभव की समानता, विचार साहचर्य से अनेक प्रिय वस्तुओं या व्यक्तियों का स्मरण, सुंदर और उदात्त दृश्य या प्रसंग को देखने से मन का उदात्त

अवस्था को प्राप्त होना, अपनी भावनाओं का विरेचन होना इत्यादि। इन्हीं के कारण काव्यानंद की उपलब्धि होती है। करुण रस से प्राप्त आनंद का संबंध वे करुणभावना के कारण उत्पन्न विविध संस्कारों से स्थापित करते हैं।

वामन मल्हार की साहित्य-समीक्षा में कला और नीति का परस्पर संबंध महत्व का विषय है। कला नीति और सत्य का परस्पर संबंध स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है - "कला नीति और सत्य भी सामान्यतः अपने अपने ढंग से स्वतंत्र हैं फिर भी अंततः एक रूप ही हैं। यद्यपि हम अपने मन के, ज्ञानप्रिय, नीतिप्रिय और कलाप्रिय, ऐसे तीन भाग अपनी सुविधा की दृष्टि से करते हैं, परंतु इन्हे भिन्न नहीं समझना चाहिए। ये परस्पर सापेक्ष, अन्योन्याश्रयी और परस्पर संस्कारक हैं।" इसी के साथ उन्होंने यह भी कहा है कि इन तीनों की अंतिम भूमिका निश्चित करते समय इनमें से प्रत्येक घटक को अपने दायरे में जितना हो सके उतना स्वातंत्र्य देना चाहिए।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कलाकार की रचना का किसी न किसी तरह नीति से सरोकार प्रतिपादित कर क्या हम कलाकार के रचना-स्वातंत्र्य को सीमित नहीं करते? इस प्रश्न पर विचार कर, वामन मल्हार ने कलाकार के स्वातंत्र्य को ही सर्वोपरि माना है। विशेष परिस्थिति में प्रचलित नीति का त्याग भी उन्हें मान्य है परंतु इस शर्त के साथ कि उससे भिन्न और मानव कल्याण की दृष्टि से उच्चतर नीति पुरस्सर की जाए। यदि ऐसा कुछ न हो तो अकारण औचित्य भंग नहीं करना चाहिए क्योंकि कलाकार आखिर में, समाज के निर्माण में एक घटक भी तो होता है। इस तथ्य को वामनराव कभी नहीं भुलाते। उनका मत है कि कलानीति का प्रश्न विवेकबुद्धि और शुद्ध अंतःकरण से ही हल किया जा सकता है। कला या जीवन संबंधी कोई भी प्रश्न हो, वामन मल्हार के लेखों में शुद्ध अंतःकरण सम्मत सुचिंतित विवेक को असाधारण महत्व दिया गया है।

साहित्य विषयक सैद्धांतिक विचारों के लिए उनका 'वाङ्मय कालनिष्ठ की व्यक्ति निष्ठ?' शीर्षक लेख अध्ययन योग्य है। 1930 के बाद महाराष्ट्र को मार्क्सवाद का साधारण परिचय मिलने लगा था। जीवन और साहित्य तथा उनकी परस्पर प्रतिबद्धता पर बल देनेवाली नई दृष्टि भी उत्पन्न हो गई थी। यह दृष्टि महत्वपूर्ण थी परंतु महाराष्ट्र में इसका प्रसार ऊबड़खाबड़ और ठेठ तरीके का था। साहित्य-रचना के जीवन से संबंध को जकड़ बनाया जाने लगा था। वामन मल्हार को मार्क्सवाद से परहेज़ नहीं था परंतु 'कारणानाम् अनेकता' की अवधारणा करनेवाले वामन मल्हार जैसे, व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी विचारक को, साहित्य और जीवन का इतना सख्त गठबंधन मान्य नहीं था। "क्या कला, क्या नीति और क्या सत्यप्रेम, इन्हे फूलने-फलने के लिए स्वतंत्रता की खुली हवा चाहिए।" उनका यह कथन ठीक ही है, परंतु तत्कालीन अन्य विचारकों के अनुसार साहित्य और समाज के परस्पर संबंध के विषय में उनकी पहुँच दुविधापूर्ण है इसकी जानकारी उनके 'अलीकडे महाकाव्ये का निर्माण होत नाहीत?' (विचार सौंदर्य) शीर्षक

लेख से प्राप्त हो जाती है। आजकल महाकाव्य न लिखे जाने के संबंध में विचार करते हुए वे फुरसत का अभाव, अभिरुचि में बदलाव, सामाजिक परिवर्तन जैसे कारणों को युक्तिसंगत ठहराते हैं और सच्ची काव्यप्रतिभा हो तो किसी भी परिस्थिति में काव्य लिखा जा सकता है, यह भी जोर देकर कहते हैं। अतः महाकाव्य के अभाव का कारण वे आज प्रतिभा के अभाव में खोजते है। परंतु प्रतिभा के इस समय अभाव की चर्चा में केवल जीवन की अस्थिरता, ढहते हुए जीवनमूल्य, छोटे मोटे प्रश्नों में उलझ जाने की आज की मनोवृत्ति आदि कारणों पर ध्यान आकर्षित करते हैं। वास्तव में रागिणी में लेखक वामन मल्हार को सहज ही यह सोच लेना चाहिए था कि महाकाव्य का स्थान अब उपन्यास ने ले लिया है। उन्होंने ऐसा नहीं सोचा। सोचा भी हो तो लिखा नहीं।

मर्ढेकर के अनुरोध पर साहित्य संबंधी प्रश्नों का विचार करते हुए वामन मल्हार ने उनकी पुस्तक 'वाङ्मयीन महात्मता' की जो प्रस्तावना लिखी है, वह महत्त्वपूर्ण है। सैद्धांतिक धरातल पर साहित्य की मीमांसा करनेवाला यह संभवतः उनका अंतिम महत्त्वपूर्ण लेख है। इस लेख में उन्होंने साहित्य में आत्मनिष्ठा, कलाकृति में लेखक के अपने अनुभव का स्थान, इत्यादि विषयों पर जो पांडित्यपूर्ण समीक्षावृत्ति और साहित्य विषयक विद्वत्ता का परिचय दिया है उससे पता चलता है कि अंततक उनमें कितनी ताज़गी विद्यमान थी।

वामन मल्हार की अनुप्रयुक्त समीक्षा में अधिकांशतः पुस्तकों का परीक्षण है। उसमें काव्य अथवा कथा की अपेक्षा उपन्यास के ही परीक्षण को प्राथमिकता दी गई है। ऐसा इसलिए हुआ है कि वे स्वयं भी उपन्यासकार थे। उन्होंने समकालीन लेखकों के जिन उपन्यासों की परख की है वे है डॉ. केतकर के उपन्यास, श्रीपाद कृष्ण का 'दुटप्पी की दुहेरी', गो. चिं. भाटे का 'प्रेम की लौकिक' (प्रेम या प्रसिद्धि) तथा उत्तरकालीन लेखकों के हैं - गं. त्र्यं. माडखोलकर का 'भंगलेले देऊळ' (भग्न मंदिर), पु. य. देशपांडे का 'बंधनाच्या पलीकडे' (बंधनों के पार) इनके अतिरिक्त वामन मल्हार ने अपने परीक्षणात्मक लेखों में कृ. प्र. खाडिलकर का नाटक 'सत्वपरीक्षा', न. चिं. केळकर का 'गतगोष्ठी' शीर्षक आत्मचरित्र और कृष्णाबाई का कथासंग्रह 'अनिरुद्ध प्रवाह' की समीक्षात्मक चर्चा की है।

वामन मल्हार के समय में ग्रंथ परीक्षण को समीक्षा क्षेत्र में बड़ा महत्व दिया जाता था। उस काल में लेखकों का एक बड़ा वर्ग विस्तृत, सपरिश्रम अध्ययन करके ग्रंथ-परीक्षण किया करता था। परीक्षण के ढांचे में लेखक परिचय, उसकी प्रशंसा, रचना का विशिष्ट स्वरूप, प्रयोजनात्मक वक्तव्य, कृति के संबंध में अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रिया, गुणदोषों का उल्लेख और भाषा विचार हुआ करता था। वामन मल्हार ने बहुत सीमातक इसी नक्शे को अपनाया है। आत्मकथन युक्त पुस्तकों में उनकी खास दिलचस्पी रही है। यह उनके ग्रंथ-परीक्षणवाले लेखों को समग्र रूप से देखने पर स्पष्ट हो जाता है।

यही तो उनकी विशेष रुझान की अभिव्यक्ति शैली रही है। उनके परीक्षण में गुणदोष विवेचन का रूप मृदुल और स्पष्ट है। इस काम के सिलसिले में उन्होंने सैद्धांतिक प्रश्नों का तर्कपूर्ण विवेचन भी किया है। इसका एक अच्छा प्रमाण केतकर के उपन्यासों की समीक्षा है।

वामन मल्हार के समीक्षाकार्य का मूल्यांकन करते हुए समस्त मराठी समीक्षा का पर्यालोचन करनेवाले डॉ. व. दि. कुलकर्णी लिखते है - "यह बताया जा चुका है कि अपनी स्वतंत्र चेतना से वामन मल्हार साहित्यालोचन किस तर्ज से किया करते हैं। उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र (साहित्यशास्त्र) और उसी तरह आधुनिक मराठी साहित्य में प्रचलित वादों को अनुचित महत्व न देते हुए साहित्यशास्त्र के बुनियादी सिद्धांतों को ही अधिमान दिया- - - - कला संबंधी चिंतन में एकांगिता और हठाग्रह के वातावरण को स्वच्छ करने में उन्होंने 'कारणानाम् अनेकता' और 'विचार सौंदर्य' के अपने सिद्धांतों से बहुत सहायता पहुँचाई। वामन मल्हार का साहित्य चिंतन आधुनिक दर्शन के अध्येताओं द्वारा मराठी के अंतर्गत किया गया स्वतंत्र चिंतन है। उसमें संस्कृत काव्यशास्त्रीय रसिकनिष्ठता की अपेक्षा पाश्चात्य समीक्षा में निर्दिष्ट कलारचना प्रक्रिया को ही अधिक प्राधान्य दिया गया है। इसे देखते हुए यह कहना समीचीन होगा कि वामन मल्हार ने सचमुच आधुनिक अर्थात् आज के नवसाहित्यपरक विचारों की परिपाटी स्थापित की है।"

5.
स्फुट ललित-लेखन

वामन मल्हार के साहित्यदर्शन और उपन्यासों की चर्चा के उपरांत अब अधिक परिमाण में लिखित उनकी ललित कृतियों का विवेचन किया जा रहा है। इनके अंतर्गत कथा साहित्य ('नवपुष्पकरंडक' 1916) संस्मरण ('स्मृतिलहरी' 1942) और नाट्यसाहित्य ('विस्तवाशी खेळ' 1937 और अन्य कुछ छोटी नाटिकाओं) को सम्मिलित किया गया है। उपर्युक्त लेखन के अतिरिक्त विविध विषयों पर फुटकर रचनाएँ संकलन के रूप में आज भी प्रकाशित नहीं हुई हैं। यदि इनका संकलन प्रकाशित हो जाए तो सैद्धांतिक चिंतन, व्यक्ति चर्चा, एवं समीक्षा के क्षेत्रों में मराठी साहित्य की उल्लेखनीय श्रीवृद्धि होगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

सर्वप्रथम वामन मल्हार के नाट्य और कथा साहित्य पर विचार किया जा रहा है। उनकी 'स्मृति-लहरी' महत्वपूर्ण मौलिक पुस्तक है। उस पर अंत में कुछ विस्तार से विचार करना होगा।

'विस्तवाशी खेळ' (आग से खेलना)

1937 में लिखा गया 'विस्तवाशी खेळ' वामन मल्हार का एक मात्र नाटक, 'स्वतंत्र सामाजिक नाटक' है। निष्क्रिय पुरुष पात्र, त्रुटिपूर्ण शिल्प, पुरातन पद्धति की नाट्यगुणरहित रचना, दोषपूर्ण कथानक इन सब के कारण यह कृति कमजोर सिद्ध हुई। यह नाटक केवल इसलिए उल्लेखनीय है कि इसके माध्यम से वामन मल्हार ने तत्कालीन बहुचर्चित 'नवमतवाद' को स्वीकार करने में सावधान रहने का इशारा किया था।

इस नाटक में नवमतवाद की चेतना के संबंध में प्रा. वा. ल. कुलकर्णी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा है - ''थोड़ा बहुत ध्यान में जो रह जाता है वह इस नाटक की 'विजया' है, और वह नई रोशनी की स्त्रियों का चित्र सामने लाने के लिए, तथा उस चित्र के जरिए वामनराव द्वारा यत्किंचित निरूपित किए गए समाज-दर्शन के लिए।—'स्त्री-पुरुषों में मिलनाजुलना और बातचीत होनी चाहिए, समाज से नहीं डरना चाहिए, विवाह संस्था की अब आवश्यकता नहीं है' इस तरह के मत, स्थल, काल और व्यक्ति का विचार किए बिना प्रतिपादित करनेवाली परंतु स्वत्व को सुरक्षित

रखनेवाली स्वाभिमानिनी, निष्कपट, मुंहफट, किंचित अविचारी नारी है विजया! परंतु इसी नारी में ईमानदारी से अपनी गलती मान लेने का विवेक भी है। मौके बे मौके बर्ट्रेंड रसेल के पूर्वोक्त विचारों को प्रतिपादित करने का अनपढ़ नर्मदा के चरित्र पर कितना अनिष्ट प्रभाव पड़ा है इसका अनुभव होते ही वह कहती है - 'नवमतवादी बातों का शोला एकाधबार ऐसी आग लगा देगा, यह मेरे ध्यान में नहीं आया था।"

इस नाटक के रचना-काल में नवमतवाद का बोलबाला हो रहा था। इस 'वाद' का कुछ भाग वामन मल्हार को भी ध्यान देने योग्य और ग्राह्य लगता था। परंतु वे इस विषय में संतुलित मनोवृत्ति की आवश्यकता का भी अनुभव करते थे। उन्हें लगता था कि असंतुलित और देशकाल की उपेक्षा करनेवाले नवमतवाद का प्रचार 'आग से खेलने' के समान ख़तरनाक होगा। इस ख़तरे से सतर्क करने के उद्देश्य से ही वामन मल्हार ने यह नाटक लिखा, और लोगों को सतर्क किया। नवमतवाद के संबंध में उनका दृष्टिकोण कितना विवेकपूर्ण है यह समझने के आशय से ही इस नाटक को महत्व प्राप्त हुआ है। इस नाटक की प्रेरणा वामन मल्हार की यह बताने की बेचैनी थी कि, किसी नए दर्शन या विचार को आत्मसात् करने से पहले उसे अच्छी तरह जाँच-परख लेना चाहिए।

संवाद और नाटिका

1940 से पहले नाटक, आरंभ में मुख्यतः स्कूलों-कॉलेजों, सभा-संमेलनों में प्रस्तुत करने के लिए लिखे जाते थे। वामन मल्हार हिंगणा की शिक्षण-संस्था में अध्यापन करते थे। संमेलन आदि में अवसर साधने की दृष्टि से उन्होंने संवाद और नाटिकाएँ लिखीं। "उनका उद्देश्य नैतिक शिक्षा देना है। इनमें भी वामन मल्हार के लेखन की बहुत सी विशिष्टताएँ व्यक्त हुई हैं। विषय कोई भी हो, उसे संपूर्णता में जाँचने-परखने के पश्चात् ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की आदत, कल्पना और शब्दों की भंगिमाओं पर आधारित प्रसंगोचित विनोद, नवरचनात्मक प्रतिभा के नूतन अभिकल्प, नारी के मन और स्वभाव का सही और सहानुभूतिपूर्ण अंकन, उनकी सारी रचनाओं में गहरी पैठी सत्यनिष्ठा आदि सभी गुणविशेष संवादों में भी परिलक्षित होते हैं।" इस नाट्य लेखन में भी वामनराव की उत्कट कल्पनाशीलता की चमक दिखाई दे जाती है। 'स्वराज्य-मेळा' में संवाद के पात्रों के, राजकारणबाई, सामाजिकबाई, गोरक्षबाई, राष्ट्रीय शिक्षणबाई, एकीकरणबाई, स्वदेशीबाई, सत्याग्रहीबाई इत्यादि नाम रख कर उन्होंने प्रत्येक विचारवर्ग के आग्रह में निहित एकांगिता को बेनक़ाब किया है। 'लीलारहस्य' भी इसीतरह का कल्पनात्मक संवाद है। इसमें वामनराव का शब्दक्रीड़ा चातुर्य अत्यधिक प्रकट होता है। 'स्वप्नच नाहीं तर काय?' यह भी लेखक की कल्पना प्रवणता का ही परिचय देनेवाली नाटिका है। इसका विषय आर्यावर्त में वर्णद्वेष है और नाटिका के अंत में उन्होंने यह आशा व्यक्त की है कि "धीरे धीरे इसमें सुधार होता जाएगा।"

सभा संमेलनों के अवसर पर प्रस्तुत करने के लिए तैयार की गई ये कृतियाँ थोड़ी और गुण की दृष्टि से साधारण हैं। फिरभी उनमे वामन मल्हारकी सिद्धान्त विवेचनवृत्ति और सहृदय व्यक्तित्व सांगोपांग विचार करने की रुझान और नवीनता उद्भासित करने के लिए आकुल उनकी कल्पनात्मक प्रतिभा दिखाई दे जाती है। 'नवपुष्प करंडक' (1916) वस्तुतः वामन मल्हार की ललित रचनाओं का आरंभ विंदु है। 1916 से पहले 'मनोरंजन', 'नवयुग', 'चित्रमय जगत्', 'केरळ कोकिळ' इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित 'मनोरंजक लेखों और लघु-कथाओं' को इस पुस्तक में संग्रहीत किया गया है। इस संग्रह की प्रथम आवृत्ति के संपादक का. र. मित्र ने स्वयं इसकी सामग्री के लिए 'मनोरंजक कहानी या छोटी कहानी (लघुकथा)' नामों का प्रयोग किया है। इस संदर्भ में, आरंभ में ही यह वता देना जरूरी है कि डॉ. मा. गो. देशमुख के मतानुसार "ना. म. जोशी के 'मनोरंजक लेख' ही आज के लघुनिवंध और उनकी 'छोटी कहानी' आज की लघुकथा मानी जाती है। इस संग्रह के 'मनोरंजक लेख' से हमारा आशय आज 'ललित लेखन' कही जानेवाली रचना का पूर्व रूप ही है।

'नवपुष्पकरंडक' के लेखों का प्रकार और शैली वामन मल्हार के डेक्कन कॉलेज के विद्यार्थी जीवन की देन है। वहीं उनकी 'ललित लेखन' में रुचि उत्पन्न हुई और उन्होंने काफी लिखा भी। उन्हीं दिनों अंग्रेजी के वैयक्तिक निवंध 'फ्रोझन व्हायसेस्' पर आधारित 'गोठलेले आवाज़' (जमी हुई आवाज़) शीर्षक मनोरंजक लेख उनके सहपाठियों ने वहुत सराहा था। 'बायकांना उजव्या डोळ्याने दिसत नाहीं' (स्त्रियों को दाहिनी आँख से नहीं दिखता) शीर्षक कथा भी डेक्कन कॉलेज के दिनों में लिखी थी। वामनराव की इन रचनाओं में उनकी चित्त प्रसन्न करनेवाली विनोद बुद्धि (वायकांना उजव्या डोळ्याने दिसत नाहीं) तीक्ष्ण व्यंग (दुसरा एक शोध) असाधारण कल्पना की क्षमता (अप्रकाश किरणांचा दिव्य प्रकाश) मानव स्वभाव दर्शन (अहंकार) इत्यादि विशेष प्रभावी सिद्ध होते हैं।

'वायकांना उजव्या डोळ्याने दिसत नाहीं' लेख केवल कल्पनारंजित नहीं है हालांकि उसमें कल्पना की प्रधानता है परंतु कथा के समापन को व्यंगात्मक घुमाव देते हुए 'स्त्रियों को दाहिनी आँख से नहीं दिखता' खोज निकालनेवाले विश्वनाथ पंत के संवंध में उनका यह अनुमान दर्ज करना कि कदाचित वे स्वयं दाहिनी आँख से देखने में असमर्थ होंगे, बड़ा मनोरंजक वन पड़ा है। 'दुसरा एक शोध' उन सनातनी लोगों को दिया गया करारा जवाब है जो सुधारकों की आलोचना किया करते थे। "ऊँचे आने की आकांक्षा हो तो ऊपर ही ऊपर देखते रहो" "—आलोचना करते समय सद्सद विवेक के साथ गहराई से विचार करना छोड़कर अपना काम शुरू कर दिया जाए इससे कलम जल्दी जल्दी चलती है, उसमें तीखापन भी आता है और समाज में शीघ्र साख जम जाती है, सम्मान प्राप्त होने लगता है।" इस. रचना में लेखक ने ऐसे उपदेश देनेवालों की मानलिप्सा का उपहासपूर्ण व्यक्तिचित्र खींचा है। नाट्यक्षेत्र में भी एक

ऐसा ही व्यक्तिचित्र रुपांकित किया है। उसे समकालीन नाट्यरचना पर, कथा के रूप में वामन मल्हार की आलोचना समझना चाहिए। उनकी आलोचना का लक्ष्य है नाटकों में विषय-वस्तु और चरित्रचित्रण के संबंध में सांचाबद्धता। 'चारित्र्यकांती' भारत में बसे यूरोपियन दम्पति की कथा है। इसमें वामनराव का समस्त नारीजाति के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण *अभिव्यक्त हुआ है। 'दोन स्वदेशींचा लढा'* एक *विशेष उद्देश्य* से लिखी गई कहानी है। अंग्रेज पत्नी और भारतीय पति का अपने अपने देश से प्रेम उनके परस्पर प्रेम में बाधक बन जाता है, और स्थिति तलाक तक आ पहुँचती है। इस कथा के माध्यम से लेखक ने स्वदेशी भावना के एकांगीपन के परिणाम को हमारे समक्ष उजागर किया है। 'दोन स्वदेशींचा लढा' की रचना वस्तुतः आज के लघु उपन्यास का पूर्व रूप कही जा सकती है। इसके आकार में सात अध्याय हैं। *'अप्रकाश* किरणांचा दिव्य प्रकाश' शीर्षक कहानी का आधार वैज्ञानिक संकल्पना है। मराठी में आज भी विज्ञान कथा कहाँ समुचित विकास प्राप्त कर पाई हैं! इस स्थिति में लगभग सत्तर वर्ष पूर्व वामन मल्हार ने गृहीत विज्ञान संकल्पना पर कहानी लिखकर सराहनीय योगदान किया। वामन मल्हार के उपन्यासों की 'नई स्त्री' उनके आरंभिक कथासाहित्य में भी दृष्टिगत होती है। 'नाव बदलीन' की नायिका यमुना खरे, इस कहानी में पुरुषों के साथ युद्ध के संबंध में बराबरी से बहस करती है, अतः सहज ही, इस पात्र की ओर ध्यान जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि 'नवपुष्प करंडक' में फूलों के रंगरूप विविध प्रकार के हैं। यद्यपि इनमें परस्पर कोई मेल नहीं है फिर भी वामन मल्हार के स्वभाव और रुझानों और लेखनशैली की गंगोत्री समझने के अभिप्राय से यह संग्रह मूल्यवान सिद्ध होता है। उनकी इस आरंभकालीन रचनाओं से ही जीवन विषयक उनकी अधिकाधिक बौद्धिक छानबीन, और सैद्धांतिक परीक्षण की विशिष्ट प्रतिभा का रूप स्पष्टता से उभरकर आता है।

स्मृतिलहरी

'नवपुष्प करंडक' और 'स्मृतिलहरी' रचनाकाल की दृष्टि से दो सिरों पर स्थित हैं। नवपुष्प करंडक 1916 से पहले का है और 'स्मृतिलहरी' 1935 के बाद लिखी गई है। 'नवपुष्प करंडक' में वामन मल्हार का लेखन साहित्य क्षेत्र में प्रवेशाकांक्षी का सा है तो 'स्मृतिलहरी' में वह परिपक्व हो चुका है। इन दोनों में समानता का सिलसिला उनकी रचनाओं से बराबर उत्सर्जित होनेवाले व्यक्तित्व और काव्यशास्त्र विनोद वृत्ति के रूप में लगातार सामने आ जाता है। 'नवपुष्प करंडक' को यदि उनके रचना-प्रवाह की गंगोत्री माना जाए तो यह कहना होगा कि 'स्मृतिलहरी' से उस प्रवाह में शुद्धता, शुभ्रता और पवित्रता आई है। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर ने 'रागिणी' की तुलना गंगा से की है। इस उपमा का विस्तार करते हुए यह कहना यथार्थपरक होगा कि 'स्मृतिलहरी'

की लहरें भी गंगा की लहरों के समान ही हैं। यदि यह प्रश्न किया जाए कि वामन मल्हार की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक कौन सी है? तो इसके उत्तर रुचिभिन्नता के कारण भिन्न भिन्न हो सकते हैं किन्तु परिष्कृत अभिरुचिवाला कोई भी पाठक यह उत्तर देगा कि 'स्मृतिलहरी' आशय और अभिव्यक्ति, दोनों की दृष्टि से श्रेष्ठ है। वामन मल्हार की परिपक्व अन्तश्चेतना की सुरभि 'स्मृतिलहरी' में सर्वत्र बसी हुई है। इसमें उनके व्यक्तित्व, चिन्तन, काव्यशास्त्र विनोद प्रचुर शैली के विविध अंग, संयम, व्यंजकता और अनौपचारिकता से प्रकट हुए है और बहुत ही हृदयग्राही हैं।

'स्मृतिलहरी' मराठी का एक उत्कृष्ट निबंध संग्रह है। ललित निबंध की रचना मनमानी घुमक्कड़ी की तरह होती है। उसमें एक प्रकार की सच्ची आत्मनिष्ठता व्यक्त होती है, तथा रूपरेखा संबंधी किसी अनुशासन का पालनकरना आवश्यक नहीं होता। इसका स्वरूप दो चार मित्रों के बीच निस्वार्थ, निष्कपट सहज संवाद के समान होता है। उसमें कवित्व, व्यंगविनोद और क्रीड़ावृत्ति के लिए बड़ी गुंजाइश रहती है। कहा जाता है कि इन सब विशेषताओं से ललितनिबंध पाठकों को सहज ही चिंतन के स्तर पर पहुंचा देता है। परन्तु वास्तव में इस प्रकार की सफल ललित निबंध - कृति बहुत ही कम नज़र में आती है। इस दृष्टि से 'स्मृतिलहरी' अपवाद ही मानी जाएगी।

'छह आने दाम के लोटे' से लगाकर 'सर्वव्यापी क्रांति किस तरह होगी' विषय तक, अनेक विषयों की चर्चा 'स्मृति लहरी' में की गई है। वामन मल्हार इन विषयों को अत्यंत सहजता से प्रस्तुत करते हैं और जानकारी देने के तरीके से धीरे धीरे गहन विचारोंतक ले जाते हैं। उक्त ग्रंथ में विषय कितने विविध हैं यह ध्यान देने लायक है। स्त्री श्रेष्ठ या परुष? वधू की परीक्षा की पुरानी रीति सदोष या निर्दोष? आज की नारी आजन्म अविवाहित रह सकेगी? नारीयोंका वर्तमान स्वातंत्र्यवाद मारक है या तारक? क्या आज की परिवार व्यवस्था त्याज्य है? पूंजीपतियों का हृदय परिवर्तन करके क्या समाज को सुधारना संभव होगा? निजी संपत्ति प्रतिषिद्ध करने से क्या नए मनु का उद्भव हो सकेगा? वर्तमान जनतंत्र के लिए धनिकतंत्र से क्या ख़तरे हैं? नैतिक सद्गुण, दुर्गुण कैसे सिद्ध होते हैं? भलमनसाहत और सात्विक वृत्ति क्या दुर्गुण साबित हो सकते हैं? जनमत को कितना महत्व देना चाहिए? इस वैज्ञानिक युग में अशुभ दिन सरीखे शकुन अपशकुन पर कितना विश्वास करना चाहिए? फलां धर्मावलंबी अच्छे हैं और अन्य धर्मावलंबी खराब हैं, क्या यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है? गोलमोल बात कथनी में तो मधुर- मनभावन लगती है परन्तु करनी में खोखली साबित होती हैं, यह सच है क्या?

वामन मल्हार ने जो उपर्युक्त विषय 'स्मृतिलहरीं' में विवेचन के लिए चुने वे महत्वपूर्ण तो थे ही समकालीन भी थे। इनमें से अधिकतर नई पीढ़ी में रोज के चिन्तन के विषय थे। कुछ आज भी हैं। पूर्णतः गंभीरविचारात्मक विवेचनार्ह इन विषयों को भी वामन मल्हार ने तरुण मानसिकता, मनोवृत्ति और रुझान के अनुकूल हलकी फुलकी

बातचीत के तरीके से गपशप करते हुए प्रस्तुत किया है। 'स्मृतिलहरी' में हितोपदेश सहज मनोरंजक शैली में व्यक्त किया गया है। उसका स्वरूप 'पसंद आए तो ग्रहण करो' प्रकार का है।

'स्मृतिलहरी' की रचनाशैली मनोविनोदी गपशप पूर्ण हलकीफुलकी और स्वाभाविक होने के कारण, उसमें कहानी की अनुहार आगई है। वामन मल्हार ने कहानी लिखने के लिए आवश्यक व्यक्ति-चित्र भी अंकित किया है। सारे ही लेखों में वर्णित धोंडो पंत बर्वे मराठी साहित्य में अद्वितीय व्यक्तित्व है। धोंडोपंत बर्वे और उनका विद्यार्थी परिवार लेखक की काल्पनिक सृष्टि है। महाराष्ट्र के समाजसुधारक धोंडोपंत कर्वे की तरह धोंडोंपत बर्वे भी वास्तव में एक आध्यापक थे। इस तथ्य का विश्वासदिलाने के लिए वामराव ने अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है - "वे मेरे मित्र थे। मैं उन्हें अपने संस्मरण लिख डालने को कहा करता था, परंतु उन्हें यह एक काम झंझट मालूम होता था। अंत में उनसे सुनकर मैंने ही यह काम करने का निश्चय किया।" पाठकों में विश्वास जगाने के लिए 'आश्रमहरिणी' की प्रस्तावना में भी वामनराव ने ऐसा ही वक्तव्य दिया है। इस 'आभास सर्जना' के फलस्वरूप 'स्मृतिलहरी' यादों की एक जीती जागती दुनियाँ ही बन गई है।

धोंडोपंत बर्वे बड़े बातूनी प्राध्यापक हैं। हैं तो संस्कृत के प्राध्यापक पर उनकी रुचि का विषय दर्शनशास्त्र भी है। साहित्य में आंतरिक दिलचस्पी है, और उन्होंने कुछ टीकात्मक लेख भी लिखे हैं। विद्यार्थियों से उनका खुलेदिल से मेलमिलाप और वार्तालाप होता है। धोंडोपंत बर्वे आदतन उलटी सीधी बातें करते करते किसी एक समस्या के सभी पहलुओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित किया करते हैं। वे स्पष्टवक्ता हैं, उनके विचारों में बारीकी है पर हठाग्रह नहीं है। उनकी सहज ध्यान खींचनेवाली खास बातें थीं सादी पोशाक, संकोची स्वभाव, और स्वभावगत भुलक्कड़पन। कई बार उनकी बातचीत और बर्ताव के कारण विद्यार्थियों और साथ के प्राध्यापकों में ग़लतफ़हमी हो जाती, परंतु धोंडोपंत के जन्मजात सीधे सच्चे स्वभाव के कारण जल्दी ही दूर भी हो जाती थी।

प्रा. धोंडोंपंत बर्वे के उपरिवर्णित स्वभाव के परिचय से प्रतीत होने लगता है कि उनमें और स्वतः वामन मल्हार में अद्‌भुत साम्य है। (पहली आवृत्ति में धोंडोपंत का आरंभ में खींचा गया चित्र वामन मल्हार के व्यक्तित्व से मिलता जुलता है) परन्तु 'स्मृतिलहरी' को वामनराव के जीवन की घटनाओं के स्मृति-चित्रों का संकलन कहना गलत होगा। सही यह है कि वे प्रथम श्रेणी के कलात्मक स्मृतिचित्र जैसे ही हैं। वामन मल्हार की निरंकुश प्रतिभा के मुक्त संचरणने यह छोटी सी पुस्तक रमणीय बना दी है। वि. स. खांडेकर ने 'स्मृतिलहरी' की सराहना निम्नलिखित शब्दों में की है-

"इस छोटी सी पुस्तक में विविध अनुभव हैं, हृदयस्पर्शी कथाप्रसंग हैं, मजेदार स्वभावचित्रण है, मार्मिक सैद्धान्तिक चर्चा है, मन प्रसन्न करनेवाले चटपटे संवाद हैं,

मनोहर विनोद स्थल हैं, श्रेष्ठविचार हैं, सुभाषित हैं। निवेदन, संभाषण या चर्चा के प्रवाह में सहजता से हमें सारा कथ्य प्राप्त हो जाता है और हमारे बौद्धिक और भावनात्मक आनंद को बढ़ाता है। किसी झरने के किनारे मौजमस्ती में टहलते समय, फूल, पक्षी, और वनशोभा वगैरह देखने से जैसे मन उल्लसित होता है, यह पुस्तक पढ़कर पाठक को भी वैसा ही अनुभव होता है। इन सारी स्मृतियों पर मार्मिक सांसारिक दर्शन की जो सौम्य स्वर्णिम छाया फैली है, बहुत समयतक हमारे परिवेश में छाई रहती है। 'स्मृति लहरी' को पढ़कर हम अपने अंदर झांकने को मजबूर होते हैं। यह कृति क्षणभर को हमें बहुत ऊंचे स्तर पर ले आती है।"

(प्रस्तावना-स्मृतिलहरी (आ. 4 थी) पुणे 1959 पृ. 14)

किसी भी प्रथम श्रेणी के साहित्य का इससे भिन्न श्रेय और क्या हो सकता है! प्रत्येक साहित्यकार यह श्रेय प्राप्त करने का अभिलाषी होता है किन्तु यह सहजसाध्य नहीं होता। उसके लिए एक अनुष्ठानवृत्ति धारण करनी होती है। जीवन के अर्थ की खोज एक ऊंची सतह से करनी पड़ती है, उसका सत्य से सौजन्य और सौन्दर्य से संयोग करना होता है। उसमें इनकी शक्ति का संचार करना होता है। वामन मल्हार ने अपने लेखन और चिन्तन-मनन में यही किया। इसी कारण 'स्मृतिलहरी' जैसी छोटी पुस्तक श्रेष्ठता के माप दंड तक पहुँची है।

6.
उपसंहार

वामन मल्हार के व्यक्तित्व की मंद सुखद सुगंध मराठी साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में महकती रही है। यहाँ साहित्य और संस्कृति, इन दो शब्दों का प्रयोग तो किया गया है, परन्तु वामन मल्हार की दृष्टि में इनका आशय भिन्न नहीं है। साहित्य और संस्कृति की सांगोपांग मीमांसा करने के पश्चात् अंत में वे इन्हें एकात्म ही स्वीकार करते हैं और इनके सहविकास की दिशा निर्धारित करते हैं।

वामन मल्हार की, महाराष्ट्र में ख्याति एक श्रेष्ठ प्राध्यापक, दार्शनिक, उपन्यासकार, कुशल समीक्षक, ललित निबंधकार, साहित्यसेवी इत्यादि रूपों में है। किन्तु उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में व्याप्त एक मात्र सरोकार है जीवन के विषय में चिन्तन। इस जीवन के अर्थ का निर्वचन करने का प्रयास, जीवन को उन्नतिशील बनाने की उत्कट कामना, इस कामना से अपने कर्तव्य, स्वधर्म और श्रेय का अनुसंधान और इस अनुसंधान के, देशकाल परिस्थिति के अनुसार क्रियान्वयन के लिए, उनका मार्गदर्शन दुर्लभ्य है इसीलिए बहुमूल्य है।

वामन मल्हार का 'महाराष्ट्र के दार्शनिक' 'महाराष्ट्र के सॉक्रेटीज़' आदि उपाधियों से उल्लेख किया जाता है। स्मरणीय है, कि उनका चिंतन घटपट आदि (पुरातन परंपरा) के स्वरूप का नहीं। वह जीवन के विविध रसरूपरंगों से समृद्ध, चित्ताकर्षक और सौंदर्यपूर्ण हो गया है। वामनराव की, दार्शनिक शुष्क शब्दचर्चा में रुचि नहीं थी। वैसे वे स्वयं दर्शनशास्त्र विषय लेकर एम. ए. हुए थे। दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक भी रहे। किन्तु उन्होंने सिद्धान्त प्रतिपादन की आग्रहपूर्ण दृढ़ता अपने में नहीं पनपने दी। जीवन की कोई घटना हो या जीवन का दर्शन ही हो, वे उसे सर्वांग रूप से देखते हुए सभी छोटे बड़े प्रश्नों को समझने और उनका समाधान खोजने में निरंतर सक्रिय रहे।

वामन मल्हार का ध्यान इन प्रश्नों पर अधिक रहा है कि विश्व आरंभ में कैसा था, इसकी अपेक्षा आज कैसा है और भविष्य में कैसा होगा अथवा इसे कैसा होना चाहिए। इसी दृष्टि से वे मनुष्य के ऐतिहासिक कर्तव्यों की रूपरेखा और दिशा निश्चित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप ही उनके ललित और ललितेतर साहित्य का सृजन हुआ है।

वामन मल्हार अपने साहित्य - सृजन में 'विचार' तत्व को सर्वाधिक महत्व का

स्थान देते हैं। हम भले ही ऊंची आवाज में घोषणा करें - 'मनुष्य विचारशील प्राणी है' फिर भी सामान्य मनुष्य को इस बात की समझ नहीं हैं कि विचार किस तरह करना चाहिए। विचार के लिए उचित आत्मज्ञान पूर्ण दिशा न ग्रहण करने के कारण संसार में दुख, ग़लतफ़हमी, दुर्जनता, दैन्य इत्यादि का प्रादुर्भाव हुआ है। उन्हें इसका मनही मन विश्वास हो गया था, इसी कारण उन्होंने विचार - तत्व पर संपूर्ण ध्यान केन्द्रित किया, उसकी व्यावहारिक और सैद्धान्तिक परतें खोल खोलकर देखा-परखा और दूसरों को दिखाया। उन्होंने शुद्ध विचारयुक्त आचार और कल्याणसाधना को स्पष्ट और स्वच्छ तरीके से किन्तु विनम्रभावसे, महाराष्ट्र के सुशिक्षितों के समक्ष नाना प्रकार से प्रस्तुत किया।

आधुनिक मराठी साहित्य में अनेक प्रसिद्ध चिन्तक, कवि, दार्शनिक, ललित लेखक विद्यमान हैं। उनके अपने-अपने क्षेत्र में किए गए कार्य भी मूल्यवान हैं। परन्तु इन सभी साहित्यकारों की पंक्ति में वामन मल्हार अपने असाधारण व्यक्तित्व के कारण कुछ अलग ही प्रतीत होते हैं। उनके लुभावने व्यक्तित्व की रसायन -सिध्दि उनकी रचनाओं में प्रकट हुई है।

मराठी साहित्य में यह सारा दुर्लभ है, अनन्य है। वा. ल. कुलकर्णी कहते हैं - "वामन मल्हार का साहित्य पढ़ने से चित्तवृत्ति स्थिर हो जाती है, मन प्रसन्न हो जाता है, अंतःकरण में सद्वृत्ति की कोंपले फूटने लगतीं हैं, जीवन पर विश्वास बढ़ता है, मन अन्तर्मुख और आशावादी होता है।" उनका यह कथन यथार्थ ही है।

● ● ●

7.

साहित्य-सूची

उपन्यास	:	रागिणी (पूर्वार्ध 1915, उत्तरार्ध 1916)		
	:	आश्रमहरिणी (1916)		
	:	नलिनी (1919)		
	:	सुशीलेचा देव (1930)		
	:	इंदू काळे व सरला भोळे (1935)		
अन्य ललित साहित्य	:	(अ) कथात्म	:	नवपुष्पकरंडक (1916) देशसेविकेचे रहस्य (1921) (सहयोग से)
		(आ) ललित निबंध	:	स्मृतिलहरी (1942)
		(इ) नाटक	:	विस्तवाशी खेळ (1937)
टीकाग्रंथ	:	A Gist of the Gita-Rahasya (1916) (डॉ. विलास खोले संपादित 'वा. म. जोशी : जीवनदृष्टी आणि साहित्य विचार', पुणे, 1983 में समाविष्ट)		
वैचारिक/चर्चात्मक	:	आधुनिक सुशिक्षितांचा वेदान्त (पुरवणी), 1915 (प्रो. महादेव मल्हार कृत 'आधुनिक सुशिक्षितांचा वेदान्त व स्वामी सच्चिदानंदाचे विचार', मुंबई 1936 इस ग्रंथमें समाविष्ट)		
	:	नीतिशास्त्रप्रवेश (1919)		
	:	सॉक्रेटिसाचे संवाद (1922)		
	:	विचार-विलास (1927)		
	:	ठाणे ग्रंथसंग्रहालय वार्षिक समारंभ : अध्यक्षीय भाषण (1932)		

: विचार-सौंदर्य (1940)
: विचार-लहरी (1943)
: विचार-विहार (1944)

वा. म. जोशी सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण लेखन

चरित्रपरक एवं व्यक्ति : कानिटकर रा. प्र., वामन मल्हार जोशी, एन्. भिडे अँड कं., पुणे, 1930
: जोशी अ. म., वडिलांचे सेवेसी, प्रका. अ. म. जोशी, पुणे, 1960
: पटवर्धन ना. म., वामन मल्हार जोशी यांचे चरित्र, पुणे,
: पाध्ये प्रभाकर, तीन तपस्वी, स्कूल अँण्ड कॉलेज बुक स्टॉल, कोल्हापुर, 1946

टीकात्मक : कुळकर्णी वा. ल. वामन मल्हार वाङ्मयदर्शन, 1944
: खोले विलास (संपा.), वा. म. जोशी : जीवनदृष्टी आणि साहित्य-विचार, पुणे, 1983
: पाध्ये प्रभाकर, वामन मल्हार आणि विचारसौंदर्य, मुंबई मराठी साहित्य संघ प्रकाशन, मुंबई, 1978

संपादन : खांडेकर वि. स. (संपा.) वामन मल्हार जोशी : व्यक्ती आणि विचार, 1948
: कुळकर्णी वा. ल. आणि कुलकर्णी गो. म. (संपा.), वा. म. जोशी : साहित्यदर्शन साहित्य अकादेमी, 1985
: डॉ. अ. ना. देशपांडे व श्री. ग. वा. जोशी (संपा.), साहित्यातील विवेक (वा. म. जोशी का साहित्यशास्त्रीय लेख संग्रह), पुणे, 1962

UNIT - 4

JOURNAL AND OTHER SUBSIDIARY BOOKS

1. Introduction :

The final accounting statements are prepared on the basis of Ledger accounts (whose accuracy is to be proved - discussed in Unit V); it is extremely important that the ledger accounts are prepared accurately and neatly. For this it is necessary to know which account will be debited and to be credited. This requires good mastery over accounting. After this, the task of prepaing ledger accounts becomes simple and even mechanical. Transactions are usually numerous and on a day there may be transactions of many different kinds. To ensure a full, proper and accurate record, it is very much desirable that all transactions are noted somewhere (as in a rough book) in their chronological order, or the concerned vouchers may be first kept filed in the order in which transactions arise.

To facilitate and simplify accounting work, transactions are classified as follows generally:

1. Cash Transactions;
2. Credit Purchases of goods in which the firm deals or of materials for producing much goods;

3. Credit Sale of goods mentioned in (2) and

4. Other transactions not covered by any of the three above categories.

Cash transactions have been dealt with in the Unit III. Here transactions, other than cash transactions will be covered.

2. <u>Objectives</u> :

The objectives of this Unit are the following :

i) To amplify the meaning, and bring out the rationale of the rules of debit and credit (mentioned briefly in Unit II).

ii) To emphasize that the various subsidiary books (including the Cash Book) belongs the same family books that bring out clearly which accounts are to be debited and which are to be credited and, thus, bring home the meaning of 'Journal', 'Journalising' etc.

iii) To show how through posting into the ledger, the principle of double entry is maintained; and

iv) To show how if transactions of a particular type are numerous, they can be treated specially(like credit purchases and sale of goods)

3. <u>Contents:</u>

The following are the contents of this Unit:

1. A brief view of the accepted rules regarding debit and credit into accounts of various types, taking different kinds of transactions into account;

2. Treatment of th Credit purchases of goods deals in by the firm or the raw materials to produce much goods;
3. Treatment of Credit sales of goods mentioned above; and
4. Treatment of various other transactions of the firm.

3. <u>Instructional Aids</u>:

Photostat copies of original vouchers of a firm - the vouchers should cover different types of transactions. The students should themselves rule the books that may be needed - this by itself will be a good exercise in making the students think as to how they can make a book more useful by providing more information without much extra cost, Also photostat copies of the Day Book(a few pages)should be available.

4. <u>Methodology</u>:

At first the various types of accounts should be shown along with the side on which an amount is to be entered, if the amount in the account is to increase or decrease.

Thus,

Asset Accounts (For Example Cash Account)

Dr.	Cr.
Increase	Decrease
(If the amount of this asset will increase, the concerned figure should be put on the left hand side i.e. 'Debited with Account).	The figure for decreas the amount of the asse will be put on the rig side, i.e. it will be 'Credited to the Accoun

Expense (or Loss) Account
(Say Interest Account)

Dr.	Cr.
Increase	Decrease
(If the amount of this item will increase, the concerned figure should be put on the left hand side i.e. debited to the account)	The figure for decreasing will be put on the right hand side i.e. it will be 'credited to the account'

Liability ccount(Say Loan Account)

Dr.	Cr.
Decrease	Increase
A transaction decreasing the amount is entered on the left hand side i.e. debited to the account.	A transaction increasing the amount is entered on the right side i.e. credited to the account

Income Account(Say Sales Account)

Dr. Decrease	Cr. Increase
A transaction decreasing the amount 5 entered on the left hand side i.e. debited in the account.	A transaction increasing the amount is entered on the right hand side i.e. credited in the account.

CAPITAL ACCOUNT

Dr. Decrease	Cr. Increase
A transaction decreasing the amount 5 entered on the left hand side i.e. debited in the account.	A transaction increasing the amount is entered on the right hand side i.e. credited in the account.

On this basis the rules of debit and credit should be developed and then posting should be discussed.

ONE EXAMPLE: (For Journal and Ledger)

JOURNAL

Date	Particulars		L.F.	Amount Dr.	Amount Cr.
1972 May 5	Cash Account	Dr.		600.00	
	To Goods Account				600.00
	(Sale of goods for cash vide cash memos).				
8	Mohan	Dr.		425.00	
	To Cash Account				410.00
	Discount Account				15.00
	(Being cash paid to and discount allowed by Mohan)				
10	Goods Account	Dr.		800.00	
	To Dutt				800.00
	(Being the goods purchased from Dutt on credit)				

Ledger

Cash Account

Dr. Date	Particulars	Folio	Amount Rs.	Date	Particulars	F.	Amount Cr. Rs.
1972 May 5	To Goods Account		600/-	1972 May 8	By Mohan		410

Goods Account

1972 May 10	To Dutt		800/-	1972 May 5	By Cash Account		600

Discount Account

				1972 May 8	By Mohan		15

Mohan

1972 May 8	To Sundries Cash 410 Dis. 15		Rs. 425/-				

Dutt

				1972 May 10	By Cash Account		800

<u>NOTE</u>: On the basis of the examples, 'Journal' and 'Journalising' should be demonstrated. Posting into the Ledger should then be shown.

Credit Purchases

Only credit purchases of the goods dealt in are to be entered. The students should be encouraged to develop the Purchase Book (or Purchase Day Book, as it is called even the name Purchase Journal is acceptable). For the totals one draft journal entry may be prepared, showing

Purchase Account Dr.
To (each Credit supplier by name)

After this it should be demonstrated how posting can be made directly into the Ledger into accounts of suppliers daily and into the Purchase Accounts at the end of the month. A chart to show postings (enclosed at the end).

At this stage a number of vouchers should be given to the student -- these should cover 1) Credit purchase of goods in which the firm deals or the materials that the firm needs, 2) Cash purchases of similar goods; and (3) Credit purchases of other things such as, Furniture, Typewriters etc. for use in the Office. The student should be asked to draw up the Purchase Book. To enable him to check the accuracy, the total of the Purchase Book should be given out after a suitable material, in case of a mistake, the student should be made to think as to what is wrong. He should also carry out postings in the ledger.

Sales Book:

The treatment is like Credit Purchases and the matter should be dealt with accordingly with the necessary changes. Chart may be prepared illustrating the postings in the Sales Book on similar lines to that of a Purchase Book.

Other Transactions:

The student should be encouraged to think of transactions not covered by Cash transactions, Credit Purchases and Credit Sales discussed above. He should also prepare the required journal entry and do the posting. The difference in the treatment of, say, interest paid when due and interest due but not yet paid and then paid later should be brought out. The reason for such entries should be discussed.

At this stage a complete set of vouchers should be given to the student who should then write up all the required subsidiary books. (The set should contain many sales returns items). The totals of the various books should be given out and the students then made to locate the errors committed by them, if any.

Introducing another Subsidiary Book:

Taking the case of many sales returns, the students should be encouraged to develop the idea of the Sales Returns Book and thus, reduce the accounts work. This idea is for general application.

Day Book:

Photostat copies of a few pages of a Day Book found in an industrial or trading concerns should be distributed among the students. They should then be encouraged by discussion in the class the features or characteristics of the 'Day Book'. They should then compare the Day Book System with the system outlined in this Unit as well as in other units and see how in any sizeable concern the Day Book system will mean more work and also a larger number of errors.

Evaluation:

Evaluation of the work of the students should be carried out by means of a comprehensive exercise on the basis of a set of actual vouchers - the exercise should involve:

1. Preparation of the subsidiary books including the Cash Book, and

2. Posting of Ledg-r Accounts

A certain number of marks should be reserved for development of a new subsidiary book - this should be ensured by giving about 10 transactions of one type, say, issue of hundis in favour of suppliers. Neatness should be given credit, for which a certain number of marks should be reserved.

REFERENCES:

1. New Trends in Teaching Book - Keeping and Accounting(pages 33 to 39) published by NCERT, New Delhi.

2. Teaching Book-keeping and Account(Chapters 8 and 9) by Musselman & Hanna.

3. Double Entry Book-keeping by Prof.T.S.Grewal.

Enclosire I

PURCHASE BOOK

Date	Particulars	L.F.	Details Rs.	Amount Rs.
1972 June 3	Ideal Furnishers, Delhi (10 charis at Rs.20/- 5 tables at Rs.100/- Delivery and Cartage (Invoice No.,...Dated....		200.00 500.00 10.00	710.00
8	Rao and Co., Hyderabad 10 Steel Cabinets at Rs.200/- Packing and delivery		2,000.00 150.00	2,150.00
9	Steel Furniture Co., Delhi 50 Collapsible chairs at Rs.15/- (Invoice No.....dated.....			750.00
	TOTAL:			3,610.00

LEDGER

Dr. Date	Particulars	F.	Amount	Date	Particulars	F.	Cr. Amt.
				1972 June 3	By Purchases		710/-

Rao & Company

Date	Particulars	F.	Amount	Date	Particulars	F.	Amt.
				1972 June 8	By Purchases		2,150/-

Steel Furniture Co.

Date	Particulars	F.	Amount	Date	Particulars	F.	Amt.
				1972 June 15	By Purchases		750/-

Purchase Account

Date	Particulars	F.	Amount	Date	Particulars	F.	Amt.
1972 June 30	To Purchases (as per P.Book)		3,610/-				

UNIT - 5

LEDGER & TRIAL BALANCE

Significance of balances -- Suspense Account

.....

I. Introduction of the Unit :

We have seen in the previous Unit (No.IV) the importance of Journal, Subsidiary books and the procedure of journalising the transactions of the day. The journal determines which account is to be debited and which a/c is to be credited, and how these are entered in the journal. The subsidiary books relates to recording of credit transactions.

Now, it is necessary to gather all transactions in a period relating to a particular subject at one place. This is the Principal Book since it contains all that information, properly summarised and classified for further work chiefly preparation of the final statements of accounts. It is obviously important that there are no errors in preparation of ledger accounts. This is ensured by means of the Trial Balance. Also, further work is based on the Trial Balance itself.

II. Objectives of the Unit

1. Preparation of Ledger accounts i.e., Posting on the basis of the subsidiary books (the matter has been dealt with in the units III and IV) and balancing them.

2. Preparation of the Tri l Balance and steps to locate the errors that there may be
3. Understanding the significance of the various ledger balances; and
4. Proper grouping and classification of the various ledger accounts.

III. Contents of the Unit

1. Review of the posting work into the balance on the basis of various subsidiary books
2. Balancing of the accounts : -
   a) Those to be balanced immediately; and
   b) Those to be kept open for the present
3. Preparation of Trial Balance
4. Identification of errors and the rectification of errors. The identification of errors is of two types :
   a) Before the final accounts are prepared; and
   b) After the final accounts are prepared.

   Note :

   a) is dealt in this Unit under Methodology; but
   b) will be discussed in Unit VI

IV. Instructional Aids :

Cyclostyled list of balances and an 'agreed' trial balance with omissions and errors should be provided to the students in order to avoid wastage of time in dictating the problem or writing it on

the black-board.

V. Methodology

Using the comprehensive exercises developed in the Unit IV, the students should be asked to carry out the postings; also balance the accounts that have to be balanced immediately. Then, list the balances of debit and Credits (including the balances in accounts not yet balanced) separately in two columns as a single sheet. The Cash Book balances must also be bought into account.

At this stage, the statement should be named as Trial Balance. The students should be asked to total the two columns and see whether the total of two columns agree.

If there is agreement, nothing further is needed but the student should be asked to compare the list of the balances with the ledger accounts again in case there is an omission.

If the Trial Balance does not agree the students should be asked to :

1. again check the total of two columns of the Trial Balance;
2. see that all balances are listed on the correct side, particularly the accounts whose balance is equal to half the difference;

3. see that no balance is omitted from the Trial Balance, particularly those balances which are equal to the difference;
4. balance and total accounts again;
5. see that the postings of amounts equal to the difference or half the difference have been correctly made; and
6. if the difference still remains, carry-out the complete check of the postings with the help of say 'red pencil'

NOTE :

The teacher should direct the students to take the steps mentioned above one by one.

A solved exercise wherein various errors are delioerately made should be given to the students and they should then be asked to locate the errors of clerical as well as errors of principle (Encl: I. Enclosed at the end)

Rectification of Errors :

It has to be emphasised that there must be no overwriting (a) If an error is found immediately the old figure may be erased and the new figure written in its place; (b) If the error is found after some time, the rectification has to be by

means of another entry in the account.

Example :

Suppose a sale of Rs.1350 is made to M/s Ram Mohan & Co but the amount posted to his account is Rs.1530.

a) The error is immediately seen, then the correction is :

Ram Mohan & Co

1982		Rs.	
Jan. 15	To sales	1350.00	(Initials of the clerk with date)

b) If the error is found at the end of the month, say, the account of Ram Mohan & Co., will appear as shown below:

1982		Rs.	1982		Rs.
Jan. 15	To sales	1530.00	Jan. 31	By Mistake in posting on Jan. 15	180.00

N.B. : The manner in which rectification is made is of great importance to see that the books of account do not lose their credibility.

The rectification of errors before preparation of final accounts should be discussed by first giving the correct entry, then comparing it with the actual entry and then seeing what is to be done.

Rectification should be discussed :

a) Firstly, without opening the suspense account;and

b) secondly, after opening the suspense account with the difference in the Trial Balance.

By means of the black-board, the effect of various types of errors should be brought home e.g.; the effect of a costing mistakes in the Purchase Book, writing a wrong amount against a customer's name, entering a Purchase in the Sales Book etc.

The exercise in II above (Enclose I) should be used for the purpose

Also a chart of errors should be developed on the Board with the help of the students

(Encl: Copy of a Chart enclosed : Encl : II)

An agreed Trial Balance with obvious omissions and errors should be given and students should be asked to comment on it and then re-draw the Trial Balance. (Enclosure III)

Rectification after the final accounts have been prepared (to be discussed in Unit VI)

NOTE : The purpose of these balances are to bring out the significance of debits and credits.

At this stage, the classification and categorisation of Accounts should be discussed, so that the students are able to identify the personal accounts, Real accounts and the Nominal accounts.

The advantages to be gained by putting the accounts relating to the following together should be brought out.

1. Capital Accounts
2. Real accounts (Assets)
3. Accounts relating to Credit customers
4. Accounts relating to Credit suppliers
5. Accounts relating to various lenders (Loan a/c etc)
6. Accounts relating to Income and Revenue
7. Accounts relating to Costs, Expenses and Losses.

Evaluation of the Unit

The knowledge gained by the students should be tested through a number of exercises without the opening of a suspense account as well as when a suspense account has been opened.

Also, there should be exercises to see what the difference in the Trial Balance was and when, after rectification has been carried out, there is still some balance in the suspence account.

(Some sample exercises are in Enclosure IV)

VI References of the Unit

1. New Trends in Teaching Book-keeping and Accounting (Pages 33 to 39) Published by NCERT, New Delhi.

2. Teaching Book-keeping and Accounting. (Chapter 8 & 9) by Musselman & Hanna

3. Double Entry Book Keeping by Prof. T.S.Grewal (for Charts & Problems)

ENCLOSURE : 1

Solved Problem : On Errors and Their Rectification

Problem : (Adopted from the Text Book of Prof. T.S.Grewal)

F.Flame started business as a Coal Merchant on 1st October, 1972. At that date he possessed a Horse and a Cart valued at Rs.1200 and Cash at the Bank Rs.5,500/- He owed Rs.1000/- to his brother, H. Flame for money lent.

Flame's transactions during October 1972, were as follows:

Date	Particulars	Amount
Oct.		
1.	Drew Cheque for use in Office	250.00
2.	Purchased 50 tons of best household Coal from B.Nutwel at Rs.50/- per ton	
4.	Purchased account books and stationery, Cash	50.00
5.	Sold on Credit 16 cwt. to G.Norwood of Coal at Rs.20/ per cwt.	
6.	Sold for Cash 5 cwt. of Coal at Rs.20/- per cwt.	
,,	Paid wages Rs.25/-	
11.	Purchased on Credit from B.Farnerl 1/2 tons of hay at Rs.30/- per ton	
12.	Paid by Cheuqe to B.Nutwell the amount due less 5 p.c. cash discount	
16.	G.Norwood paid his account by cheque less 2 1/2 p.c. cash discount	

contd......

contd. from pre-page

Date	Particulars	Amount
17.	Paid rent out of Cash	100.00
19.	Purchased on credit from Cardiff Coal & Co., 20 tons steam coal Rs.40 per ton	
22.	Sold on credit to Bracebridge Mills Ltd. 10 tons Steam coal at Rs.60/- per ton.	
23.	Returned to B.Farner 1/2 ton of damaged hay	
26.	Cardiff Coal Co., allowed Rs.15/- for short weight in Coal purchased from them.	
31.	Paid salaries out of bank	150.00
	Drew for domestic use, Cheque	200
		.....

PURCHASE BOOK

Date	Particulars	LF	Details	Amount Rs.
1972 Oct.				
2	B.Nutwell 50 Tons best household coal at Rs.50/- per ton			2,500
"	B. Farner 1½ Tons of hay at Rs.30/- per ton			120
19	Cardiff Coal Co. 20 tons steam Coal at Rs.40/ per ton			900
	Total purchases			3,520

SALES BOOK

Date	Particulars	LF	Details	Amount Rs.
1972 Oct.				
5	G.Norwood 16 cwt. of coal at Rs.20/- per cwt.			320
22	Bracebridge Mills Ltd. 10 tons steam coal of Rs.60/- per ton			600
	Total sales			920

JOURNAL

Date	Particulars	LF	DR Amount	CR Amount
			Rs.	Rs.
1972 Oct. 1	Horse & Cart a/c Dr.		1200	
	To Capital a/c			1200
22	B. Farmer Dr.		40	
	To Hay a/c			40
	(Being 1/2 ton of hay returned to B since damaged)			
26	Cardiff Coal Co. Dr		15	
	To Purchase a/c			15
	(Being the allowance made by them for short weight in respect of coal on Oct. 19)			
			1255	1255

LEDGER

Capital Account

Dr.							Cr.
Date	Particulars	F	Amount	Date	Particulars	F	Amount
				1972 Oct. 1	By Cash/ Bank a/c		5500
					By Horse & Cart a/c		1200

Ledger contd.

Horse & Cart A/c

Date	Particulars	F	Amt.	Date	Particulars	F	Amt.
1972 Oct. 1	To Capital a/c		1200				

B. Nutwell

1972 Oct. 12	To Cash Book		2500	1972 Oct. 2	By Purchase		2500

B. Farner

1972 Oct. 2	To Hay a/c		40	1972 Oct. 1	By purchase		120
	Balance c/d		80				
			120				120
				Nov. 1	Bal. b/d		80

Cardiff Coal Co.

1972 Oct. 26	To purchase a/c		15		By purchase a/c		800
31	Balance a/c		785				
			800				800
				Nov. 1	By Bal. b/d		785

G.Norword

1972 Oct. 16	To Cash book	312	1972 Oct. 5	By Sales	320
	Balance c/d	8			
		320			320

Bracebridge Mills Ltd

1972 Oct. 22	To Sales	600	1972 Oct. 31	By balance c/d	600
		600			600

Purchase Account

1972 Oct. 31	To purchase	3520		By Cardiff Coal Co.	51

Sales Account

			1972 Oct. 6	By Cash Book	100
				By Sales	920

Hay Account

			1972 Oct. 23	By Farner	40

Stationery Account

Dr. Cr.

1972
Oct
1 To Cash Book 50

Wages Account

1972
Oct. 1 To Cash Book 25

Rent Account

1972
Oct. 31 To Cash book 100

Salaries Account

1972
Oct. 31 To Cash Book 150

Drawings Account

1972
Oct. 31 To C.B. 200

Trial Balance
As on October 31, 1972

Particulars	Dr. Amount	Cr. Amount
	Rs.	Rs.
Capital Account		6,700
Horse & Cart a/c	1,200	
B.Farner		80
Cardiff Coal Co.		735
G.Narwood		8
Bracebridge Mills Ltd.	600	
Purchase a/c	3,469	
Sales a/c		1,020
Hay a/c		40
Stationery a/c	150	
Wages a/c	25	
Rent a/c	100	
Salaries a/c	150	
Drawing a/c	200	
Cash in hand	175	
Cash at Bank	2,337	
	8,306	8,633

NOTE : The Trial Balance given above does not agree.

Let us see the errors which are responsible for this

ERRORS :

a) The total of the Bank column in the Cash book is wrong. It should be Rs.5,812 and not Rs.5,312. The correction of the error will increase the bank balance to Rs.2,837/-

b) The total of the purchase book is shown to be Rs.3,500 whereas it should be Rs.3420. The effect of this error is that the debit to the Purchase A/c is Rs.100/- in excess. The correction of this error will reduce the balance in the purchase book to Rs.3369.

NOTE : It should be noted that this error does not affect in the manner the accounts of the suppliers, say, Nutwell's account, since they have been credited by individual amount.

c) The totals of the discount columns in the cash book have not been posted. The discount Account would be as follows:

Discount Account

Dr.		Rs.			Cr.
1972 Oct. 31	To Cash Book	8	1972 Oct.31	By Cash Book	125

The discount account shows a credit balance of Rs.117/- which will be written in the Trial Balance.

d) In the account of G.Norwood, the amount of the sale to him has been credited instead of debited. Further, the amount received from him should have been credited to him and not debited. The credit should have been Rs.320 and not Rs.312.

Properly prepared, the account will appear as follows:

G.Norwood

Dr. Cr.

		Rs.		Rs.
1972 Oct. 2	To Sales	320	By Cash	312
			B Discount	8

There is no balance; the amount of Rs.8/- appearing in the Trial Balance against G.Norwood will be omitted.

e) The rebate of Rs.15/- has been properly debited to the account of the Cardiff Coal Co., but the amount has been credited to the Purchase Account as Rs.51/- i.e. Rs.36 in excess. The correction of this error will increase the balance in the Purchase Account to Rs.3,405 (See b. above)

After correction of all these errors, the trial balance will be as follows :

Trial Balance (Corrected for above mistakes)

As on October 1972

Particulars	Dr. Amount	Cr. Amount
	Rs.	Rs.
Capital Account		6,700
Horse & Cart Account	1,200	
B.Farner		80
Cardiff Coal Col.		785
G.Norwood (previously Rs.8/- credit)		
Bracebridges Mills Ltd	600	
Purchase A/c (previously Rs.3469)	3,405	
Sales Account		1,020
Hay Account		40
Stationery Account	50	
Wages Account	25	
Rent Account	100	
Salaries Account	150	
Drawings Account	200	
Cash in Hand	175	
Cash at Bank	2,837	
Discount (previously nil)		117
	8,742	8,742

N.B. The Trial Balance now agrees

<u>The Trial Balance now agrees :</u>

However, the careful student will have noted that in addition to the errors mentioned above some other errors were also committed.

<u>These are the following :</u>

i) In the beginning we have entered Rs.5,500/- in the Cash Book as the capital of F.Flame. But out of this Flame forward Rs.1000 therefore the amount should be credited to the loan a/c and not to the Capital of Flame. If this error is rectified, the capital account will be reduced to Rs.5,700 in addition there will be a loan a/c of Rs.1000/

ii) Hay, Rs.120/- has been purchased and has been entered in the purchase book. Since the firm does not deal in Hay, the amount should not have been entered in the purchase book, which means a debit to the purchase a/c Rs.120/- should be transferred to the Debit of Hay a/c by crediting purchase account. The proper entry in the beginning should have been:

		Rs.	Rs.
Hay or (Housekeeper)A/c	Dr.	120	
To J.Farmer			120

NOTE: The fact that the Trial Balance agreed inspite of the two errors mentioned above shows that a Trial Balance may agree even when there are some errors. In otherwords, the agreement of a Trial Balance is not a guarantee that there are no errors whatever. Some errors affect the Trial Balance if they are committed, the trial balance will not agree.

There are other errors which do not affect Trial Balance it will agree inspite of them. <u>They are given in the enclosed sheet</u> (Encl:II)

Enclosure II

CHART ON TYPES

E R R O R S

(1)	(2)		
Errors of Principle	Errors of Omission	Clerical Errors	
(Treating a revenue expense as Capital expenditure or Vice-versa or treating the sale of a fixed asset as ordinary sale) Trial Balance will agree.	a) Omitting an entry completely from the subsidiary books Trial Balance will agree. b) Omitting to Post the ledger a/c from the subsidiary books Trial Balance wil not agree	Errors of commission	Compensating Errors Trial Balance will agree

Trial Balance will not agree :

1. Wrong casting of S.Books
2. Posting the wrong amount in the ledger
3. Posting an amount on the wrong side
4. Wrong balancing of an amount.

ERRORS OF COMMISSION

a) Trial Balance will agree

Writing the wrong amount in the subsidiary books

b) Trial Balance will not agree.

Enclosure III

A 'greed Trial Balance with obvious omissions errors

The following is the idea of the book-keeper Mr. Wye of the Trial Balance.

Trial Balance of Mr. Wye as on March 31, 1981

Debit Balances	Rs.	Credit Balances	Rs.
Due from customers	15,000	Capital Account	35,000
Stock in Trade as on 31.3.31	20,000	Loan from Mr.X at 20% P.C.(taken on 1.10.30 interest paid till date)	25,000
Purchases	1,20,000		
Wages and Salaries	40,000	Paid in Advance to OYT	4,000
General Office Expenses	2,000	Security Deposit (with the Electricity Board)	1,000
Expenses still Payable	1,000	Due to suppliers	16,000
Cash on Hand	1,500	Sales	2,16,000
Cash at Bank	9,500	Depreciation on :	
Buildings	69,750	Building & Furniture	7,000
Furniture	15,000		
Sales Tax Collection	10,250		
	3,04,000		3,04,000

Stock in trade on April 1, 1980 was Rs.16,000

SOLUTION

Trial Bala_ 3\ corrected of Mr. Wye as on 31st March,'81)

Debit Balances	Rs.	Credit Balances	Rs.
Due from Customers	15,000	Capital Account	35,000
Stock in Trade (as on 1.4.80)	16,000	Loan taken(1.10.80)	25,000
Purchases	1,20,000	Expenses payable	1,000
Wages and Salaries	40,000	Due to suppliers	16,000
General Office Expenses	2,000	Sales	2,16,000
Interest on Loan (six months)	2,500	Sales Tax Collection	10,250
Security Deposit	1,000		
Cash	1,500		
Cash at Bank	9,500		
Furniture	15,000		
Buildings	69,750		
Advance payment to O.Y.T.	4,000		
Depreciation			
Buildings & Furniture	7,000		
	3,03,250		3,03,250

Comments :

1. The stock balance shown is at the end of the year. The opening Balance is to be taken.
2. Sales tax collection is a liability which should be shown at the credit side.
3. Advance payments to O.Y.T. are to be shown at the debit side.
4. Depreciation on Buildings and Furniture is to be shown on the debit side since it is an expense.
5. Interest on Loan (taken on 1.10.80) to be calculated for 6 months. (frim 1.10.80 to 31.3.81)
6. Security Deposit is to be shown on the debit side.
7. Expenses payable to be shown on the Credit side, since it is a liability.

Enclosure -IV

Correct the following errors committed by G.Mulla :

I. a) The total of the Returns Outwards Book has been oversummed by Rs.100/-

b) Goods returned to P.Jacob & Co. Rs.150/- have not been recorded in the Returns Outwards Book.

c) While posting the account of C.Muir & Bros. for Cash paid by them, Rs.124/- the amount has been written as 241/-

d) Purchase of an office typewriter has been entered in the Purchases Day Book.

e) A Sporting gun purchased for Rs.200, for G.Mulla's son has been debited to General Expenses Account.

f) A sale of Rs.516 to M/s Goel & Co. has been entered in the Sales Book as Rs.561.

II. The book-keeper of a firm, having been unable to agree the Trial Balance, raised a Suspense Account in which he entered the amount by which he was out. The following errors were discovered:

a) Goods bought from a supplier amounting to Rs.77 had been posted to the credit of his account as Rs.770.

b) A dishonoured Bill of Exchange receivable for Rs.1,600 returned to the firms' bank had been credited to the Bank Account and debited to Bill Receivable Account. A cheque was received later from the customer for Rs.1,600 and credited to

c) An item of Rs.80/- entered in the Sales Returns Book had been posted to the debit of the customer who entered the goods.

d) An amount of Rs.800/- owing by a customer, had been omitted from the list of Sundry Debtors.

e) Discount amounting to Rs.30 allowed to a customer, had been duly entered in his account, but not posted to the Discount Account.

Show the Suspense Account as raised by the book-keeper with the adjusting entries you would find necessary to make thereon.

III. The Trial Balance of a firm is out by Rs.2,738 (Excess debit). The following errors were found, subsequently, to have been committed. Pass Journal entries to correct them.

a) An amount of Rs.100/- was received from D.Das on 31st December, 1972, but had been entered in the Cash Book on 3rd January 1973.

b) The Returns Inwards Book from December had been cost Rs.100/- short.

c) The purchase of an office table costing Rs.300 had been passed through the Purchase Day Book.

d) Rs.375 paid for wages to workmen for making showcases had been charged to Wages Account.

e) A purchase of Rs.671 had been posted to the debit of the creditors account as Rs.617. The creditor is P.Panna & Co.

f) A cheque for Rs.200 received from P.C.Joshi has been dishonoured on maturity and was passed to the debit of Allowances Account.

g) Goods amounting to Rs.100/- had been returned by a customer and were taken into stock, but no entry in respect thereof was made in the books.

h) Rs.2,000 paid for the purchase of a motor cycle for mr. Dutt (a partner) had been charged to Miscellaneous Expenses Account.

i) A sale of ;.200 to Singhi & Co. was credited to their account.

j) A sale of Rs.1,000 has been passed through the purchases Day Book. The Customer's Account has, however, been correctly debited.

IV. The Trial Balance of Mitra & Co. is out by an excess credit of Rs.352. The difference is placed in a Suspense Account and the following errors are subsequently detected. Rectify the errors by means of suitable journal entries and show the Suspense Account.

a) The total of the discount column on the debit side of the Cash Book Rs.145, was not posted in the Ledger.

b) Cash, Rs.325, received from Akbar against debt previously written off was credited to his account.

c) Sales of old office furniture Rs.383 on credit to Nulook Furniture House was entered in the ales Book.

d) While carrying forward the total of the purchases Returns Book from one page to another, the amount of Rs.1,343 was written as Rs.1,483.

e) Repairs to Office Buildings Rs.259, were posted to the Office Building Account as Rs.59.

f) A sale of Rs.589 to Kulkarni was correctly entered to the Sales Book but was placed on the credit side of Kulkarni's Account as Rs.593.

g) On receipt of Rs.490 from Verma in settlement of account of Rs.500 the discount was not entered in the discount column of the Cash Book. Verma's Account was, however, credited with Rs.500/-

h) A sale of Rs.300 to Sharma was entered in the Purchases Book: however, it was correctly debited to Sharma's Account.

How you may comments to offer?

Accountancy UNIT-6

Final Accounts including work sheet with simple adjustments: Sole-trader and Partnership.

Introduction:

Having gone through the common sense approach to the profit concept and also the basic principles, it should be possible for a student to understand the meaning and significance of final accounts for any entity aiming at profit. Besides stressing the importance of the periodical financial statements, it may be made clear to the students that the proper understanding will enable them to gain a lot of self confidence and their proficiency will be like a take-off stage for a more advanced learning.

This unit is the logical culmination of the Accounting cycle starting from the chronological recording of transactions in the journal and its subsidiary books.

The accountant collects, records and classifies the basic data on events affecting an entity. But much depends on how he classifies and summarises in a significant manner which results in the Trial Balance.

The preparation of the Final Statement of Account follows an agreed trial balance.

Objectives:

The objectives of the this unit are stated below:-

1. To enable the student to use the information in the Trial Balance for the preparation of

(i) The Trading Account so that the Gross Profit

is revealed;

(ii) The profit and loss Account so that the net profit or loss is clearly discernible; and

(iii) The Balance Sheet setting out the various assets, liabilities and the capital.

2. To make the student think of the various adjustments that are required according to the Acrual concept i.e. the information that must be taken into account to relate the Profit & Loss strictly to the concerned period - a brie discussion leading to the Matching Principle is needed.

3. To introduce to the student the worksheet for the preparation of the final statements of accounts (The form will be given under Methodology).

4. To enable the student to appreciate the meaning of "true and fair" - as regards the parties interested in the entity, such as the proprietors, creditors, lenders and others.

5. To lead the student to ascertain (without using high sounding terms) the broad flow of funds and their application.

Content:

1. Preparation of the Profit and Loss Account from a trial balance without adjustments.

2. Preparation of the final statements on the basis of the trial balance requiring adjustments of various types.

3.a. Preparation of the financial statements on the basis of the trial balance incorporating the adjustments. (It should be made clear to the students that this is the usual practice.

3.b. Preparation of the financial statements on the basis of the trial balance where even the closing stock entries have been passed.

4. The use of work sheets.

5. A discussion on the function of the financial statements bringing out the broad features of the meaning of "True and Fair" and the parties who are interested in the statements.

6. The composition of the stream of funds that became available to the firm and the uses to which they were put.

Instructional aids:

1. Cyclostyled copy of an unclassified list of ledger balances only may be given to the student for classification and the subsequent preparation of a simple worksheet.

2. Cyclostyled copy of a list of balances with necessary adjustments may be given to the student for classification, entering and the adjustments and the preparation of worksheet incorporating all the adjustments.

3. The concept of profit, gross profit, net profit and cost of goods sold may be shown in the form of equations prepared in flash cards. By means of appropriate changes in the equations the results may be varied and

clear understanding on the part of the students will be ensured.

The students may also be asked to imagine themselves as a trader, a small manufacturer or a professional and prepare a simple proforma trial balance with or without adjustments.

Methodology:

Before commencing this unit it is better if the teacher follows the sequence given below.

1. Review briefly and rapidly the earlier steps in book-keeping or accounting cycle upto the trial balance stage.

2. Elicit from the students the purpose of keeping all the records over a period. At this stage the simple Trading and P & L Account and Balance Sheet may be prepared on this basis and simple trial balance- at this point first a commonsense view of gross profit and net profit may be taken.

3. On the basis of the correct response from the students the next question as to how the cycle may be terminated by means of transfer or closing entries and as to how fresh set of accounts are opened for the next period may be explained.

4. The adjusting entries may be taken up one by one.

   a) for all outstanding expenses

b) for all expenses pre-paid or paid in advance

c) for all incomes accrued.

d) for all incomes received in advance

e) for all depreciation

f) for any provision or resource

g) The recording of the closing stock.

5. The student may also be introduced to the need for correcting a few errors which may be discovered at a later date and which affects the period in question.

Rectification has been discussed in Unit V. If rectification is carried out after preparation of the final accounts in the manner suggested in Unit V, it may mean that some of the expenses or incomes of the current year are affected, Example:

A purchase of Rs.1,000 in December 1980 omitted from the books - accounts for 1980 closed and then in March 1981 the error is found. The usual way to rectify is:

Purchases Account	Dr. 1000	
To Supplier		1000

The supplies is rightly credited but the debit to purchases Account in 1981 means increasing the purchases for 1981 and thus reducing the profit for 1981. This is not desirable since the function of the profit and loss Account is to reveal the profit or loss for the year (1981) - it should not be coloured by amounts

relating to previous years. Hence the rectification involving nominal accounts of the previous year should be through P & L Adjustment Account. In the example given above:

Profit & Loss Adjustment A/c Dr.1000
To Supplier 1000

The balance in the P & L Adjustment Account should be transferred to the Capital Account (s) directly.

6. The students may be persuaded to identify the items of balances which remain after transfering all other items and enter into a discussion about the statement showing those balances and in the end, lead the discussion to the balance sheet and its form.

7. The students may be asked to assume themselves as the proprietors or the creditors or the lenders and so on and the best way they like the assets and liabilities be arranged may be elicited. Thus importance of the marshalling the balances in the B/S for the potential users of financial information may be impressed.

8. The student need not be given the adjustment amounts straightway. Instead the details only may be given for the student to arrive at the amount e.g Interest rate and the date of loan may only be given for the student to arrive at the accrued interest. Similarly approach may be followed for other adjustments.

9. The mention of normal and abnormal items and also the deferred revenue items (without making them appear to be difficult terms) through simple examples may enable the students to appreciate their effect on the financial statements.

10. Before dealing with the partnership final accounts a brief discussion on the formation of a partnership firm and the significance of the partnership deed and the Act is a must. A model deed may be shown (if possible) high lighting the relevant provisions for the purpose of the final accounts.

I. (1) Prepare a Trial Balance as on 31st March 1981 from the balances given below. The balancing figure is deemed to be the proprietors capital.

Machinery	Rs. 3,500
Debetors	2,700
Drawings	900
Purchases	9,500
Creditors	1,400
Wages	5,000
Bank	1,500
Stock in Trade	2,000
Rent	450
Sales	14,500
Sundry Expenses	200
Carriage	150

(2) Some additional informations are now given for the above problem and you are required to prepare an Adjusted Trial Balance.

a. Stock at the end Rs.600

b. Rent Outstanding 50

c. Wages prepaid 200

d. Depreciation on Machinery at 10%

<u>Adjusted Trial Balance as on 31st March 1981</u>

	Trial Balance		Adjustments		Adjusted Trial Balance	
	Dr. Rs.	Cr. Rs.	Dr. Rs.	Cr. Rs.	Dr. Rs.	Cr. Rs.
Capital		Balancing item 10,000				10,000
Machinery	3,500			350(d)	3,150	
Debtors	2,700				2,700	
Drawings	900				900	
Purchases	9,500			600(a)	8,900	
Creditors		1,400				1,400
Wages	5,000			200(c)	4,800	
Bank	1,500				1,500	
Stock in Trade	2,000				2,000	
Rent	450		50(b)		500	
Sales		14,500				14,500
SundryyExpenses	200				200	
Carriage	150				150	

Stock at the end	-	-	600(a)	-	600	-
Rent outstanding	-	-	-	50(b)		50
Wages prepaid	-	-	200(c)		200	
Depreciation	-	-	350(d)		350	
	25,900	25,900	1,200	1200	25,950	25,950

Journal

Adjustments:

(a)	Closing stock	Dr.600	
	To Trading A/c or Purchases		600
(b)	Rent a/c	dr. 50	
	To rent outstanding		50
(c)	Wages prepaid	Dr.200	
	To wages		200
(d)	Depreciation	Dr.350	
	To Machinery		350

II From the following balances taken as on 31st Dec. 1981 and the additional information furnished by M/s Kumar & Bros., prepare a complete woksheet incorporating all the adjustments including stock.

	Rs		Rs
Cash	2,025	Land	8,000
Bank	11,000	Investments	1,000
Machinery	8,400	Sundry Creditors	12,300

Purchases	30,200	Misc. Income	450
Sundry Debtors	12,600	Sales	52,000
Rent & Rates	1,500	Salaries	8,500
Capital	30,000	Postage	500
Wages	5,000	Interest on investments	75
Office expenses	3,000	Furniture	3,000

Additional Information:-

a.	Cost of Goods sold	Rs. 23,000
b.	Salaries outstanding	1,500
c.	Accrued Interest	25
d.	Depreciation on Machinery	1,000
e.	-do- Furniture	200
f.	Rent & Rates prepaid	300

11. It is only after taking into account all the above steps covering several accounting concepts the students may be able to appreciate the concept of 'true & fair' view of the final statements. The total effect will then be an ideal instructional approach and will result in an optimum educational input.

Methodology: Practicals:

1. The students may be asked to prepare the flash cards for accounting equations as in the Unit I to recall the idea of Profit, Gross Profit and net profit.

2. A list of unclassified balances may be given for the preparation of a trial balances.

3. A small list of adjustments may be given along with the balances for the preparation of an adjusted trial balance or worksheet.

4. Students may be asked to prepare

   1. Asimple trial balance without closing stock & adjustments.
   2. A simple trial balance with adjustments
   3. A simple trial balance with closing stock.
   4. An adjusted trial balance incorporating all the adjustments which is otherwise known as work-sheet, pertaining to several kinds of sole traders and partnership firms. Viz: Textile, Hardware, General Store, Stationary and so on.

5. Published final statements may also be used for discussion.

6. Each statement may be taken up for critical study in terms of the concepts involved.

7. <u>Funds from Operations:</u>

As an introduction only to profits resulting in funds/the following exercise (or a similar one) may be worked with the help of discussion among the students.

The following was the Balance Sheet of Mr. Gopinath as at Dec. 31, 1980

<u>Balance Sheet</u>

<u>Lisabilities</u>	Rs.	<u>Assets</u>	Rs.
Sundry Creditors	37,000	Plant and Equipment	75,000
Loan	40,000	Stock in trade	41,000
Capital	92,000	Sundry Debtors	44,000
		Cash and Bank	9.000
	1,69,000		1,69,000

During 1981 he earned a profit of Rs. 31,000. He withdrew Rs. 1,500 p.m. for domestic expenses. The balance on 31.12.81 other than cash and Bank, were the following:-

	Rs.
Loan	3[illegible],000
Sundry creditors	31,000
Plant & Equipment	96,000
Stock in trade	35,000

Sundry debtors.	48.000

Mr. Gopinath had overdraft facilities at the Bank. Ascertain the Cash and Bank Balance as on Dec. 31,1981.

Solution:

Since there is profit of Rs.31.000 , this fact alone (other things remaining the same) should result in additional funds. A brief example of say something purchased for Rs.30 and sold for Rs.40 will show that there is additional cash of Rs.10/-. After this changes in assets and liabilities should be taken into account. Let us proceed:

A. Receipts:

	Rs.
Opening balance cash(and Bank)	9,000
Cash from profits	31,000
Cash through reduction in stock (goods to this extent sold)	6,000
	46,000

B. Payments or Application of the funds:

	Rs.	
Drawings (1500 x 12)	18,000	
Repayment of loan(40,000-30,000)	10,000	
Payment to Creditors (37,000-31,000)	6,000	
Increase in Debtors, additional funds locked up: (Rs.48,000-44,000)	4,000	
Plant & Equipment - addition (96,000-75,000)	21,000	59,000
Overdraft. (B-A)		13,000

The above can be put in accounts form also. A complication, which may be discussed in regard to the depreciation provided during the year.

Evaluation:

Evaluation in this unit is of utmost importance since the ability of the student to draw up the final statements of account is absolutely essential if he has to do any useful work. Therefore he should be thoroughly tested - not only in his capability to ascertain the profit or loss account but also to present the whole information (in the Profit & Loss Account and the Balance Sheet) in a neat logical and accurate manner.

This should be accomplished by:

i. giving him an unclassified list of balances and asking him to draw up the Trial Balance and then to work on it.

ii. giving him an agreed but obviously wrong trial balance along with adjustments and then requiring him to prepare the final accounts;

iii. using (ii), by requiring him to prepare the work sheet; and

iv. giving him a summary of transactions and then asking him to ascertain the missing information and then preparing the final statements of account.

(Exercises of these types are available in plenty in text books but the teacher should suitably change the exercises so that ready solutions are not available).

References:

1. Advanced Accountancy ..By M.C. Shukla & T.S. Grewal

2. Advanced Accountancy ..By R.L. Gupta & M. Radhaswamy

3. Book-Keeping & Accounting ..By Herbert Freeman
Marshall Hanna
=Gilbert Kahn
Mc Graw Hill Book Co. Inc.

4. Higher Science of Accountancy - By A.N. Agarwal

5. Advanced Accountancy - By R.R. Gupta

6. Advanced Accountancy - By H. Chakravarthy.

UNIT - 7

Financial Accounting Principles - Accounting policies - Approaches to valuation of Assets.

1. INTRODUCTION

Financial Accounting is mainly concerned with the preparation of two financial statements namely profit and Loss Account and Balance sheet. These statements are periodically prepared to report to the parties interested in the financial performance of a business unit, like shareholders, creditors, financial institutions, and Governmental bodies. Shareholders wish to know periodically whether their capital has been intact, and whether the business unit is making use of it in effective and efficient way. Creditors, similarly want to know the financial performance of a business unit, so that they can take such decisions regarding extending further credit. The interest of the financial institutions such as commercial banks, co-operative financial institutions, is similar to that of creditors. Governmental bodies are interested to know whether a business unit has made some profit, if so how much, to decide tax-liabilaty. Thus, to serve the purposes of these parties, financial statements are prepared.

The profit and loss account is a flow-statement in the sense, that all the transactions that happened between <u>two points in time</u>, are summarised, and the net result shown. The main objective behind its construction

is to ascertain whether a business unit has resulted in profit or ended up in loss. On the otherhand, the Balance sheet is a position statement if depicts the financial status at a particular point in time. The financial status, in terms of assets of various kinds held by a business unit and liabilities, it has created in acquiring these assets. But the financial status as stands at the particular point in time say on 31.12.1979 , will only be portrayed by the Balance sheet. The profit and loss account explains the changes in the supplus account capital account/Retained earnings account that appears on the Balance sheet of a Business unit. The net profit will add to the surplus account/capital account/Retained Earnings Account, and the net loss will reduce this account.

2. OBJECTIVES

The financial statements - profit and loss Account, and Balance sheet, are periodically prepared in confirmity with the principles considered to be the 'canons' of financial Accounting. Though, in the earlier units, the student is exposed to the mechanics of Financial Accounting, he is not so far posed with the question of 'why' Financial Accounts have to be structured in the way already taught in the earlier units, one through six. So, it is the objective of this unit to expose the

student to the 'rationale' lying behind the mechanics of Financial Accounting. It is expected that , at the end of the unit, the student would be able to:

- have knowledge of Generally Accepted Financial Accounting principles that underlie the preparation of Financial statement.
- Interpret the principles, and able to understand how these principles form as guideposts to the preparation of Financial Statements.
- apply the principles to the specific situations as and when they arise in the preparation of Financial statements.
- Know the broader limitations of Financial Accounting, hence will be able to avaluate the relevancy of of Financial Accounting in the present-day socio-economic context.
- Understand the direction, the financial Accounting as an area is taking.
- perceive the challanges posed by the Financial Accountants.

3. CONTENT - GENERALLY ACCEPTED FINANCIAL ACCOUNTING PRINCIPLES

3.1 Why should we have these principles?

More frequently, the student is taught about the mechanics of Financial Accounts that lead ultimately to the preparation of Financial Statements. However, the

student is neither taught nor made to think as to why he could follow the prescribed accounting procedure. Financial Accounting is not logic-ridden subject like any other subject, it has its own logic, and reasoning to which the student should be exposed. The topic - Generally Accepted Financial Accounting principles is addressed to do this job. As already pointed out, these are the principles to be complied with whole preparing Financial Statements. These principles are developed in a 'piece-meal' fashion. When accountants were faced with problems either with regard to recording or to flecting certain items in the Financial statements, they used to discuss the pros and cons of one method as against another method. When a particular method was largely agreed upon, and followed by the majority of practising accountants, that has becom a principle, so fa that problem is concerned. Similarly some principles are also distilled from the judgements of jurists. To put it simply, Financial Accounting principles are distilled from the best kind of practice, and from the judgement of the jurists.

In a business, the stream of transactions is continuous from day to day and year to year to year. But in order to provide the management, and other parties interested in a business unit with information regarding the results of operation and the status of investment, the Accountant makes the assumption that the continuity is

broken at a certain moment of time say on the last day of the financial year. Prof. Myers says that inorder to facilitate the process of breaking the record into time segments and allocating revenue and costs to them. Income statement (Profit & Locc Account) and showing cost residue in Balance sheet, a series of conventional procedures have been devised. They are called pupularly Generally Acdepted Financial Accounting principles, for they are largely followed by the practicing Accountants motherwords , they are the guideposts in structuring Financial statements.

3.2 What are those principles

The following accounting principles are generally agreed to be the guideposts to financial accounting procedures and reports. These guideposts are the 'basics' to understand the statments, leave alone to interpret them.

1. The Business Entity concept/principle
2. The Monetary concept/principle
3. The cost concept/principle
4. The going concern concept/principle
5. The Accounting period concept/principle
6. The Dual concept/principle
7. The Matching concept/principle
8. The Realisation concept/principle
9. The cost exporation concept/principle

10. The consistency concept/principle

11. The conservation concept/principle

1. Business Entity concept:

Regardless of the form of organisation, a business unit is highly individual and distinct from these persons who own and control or otherwise associate with the business. The idea has been conceptualised as Business Entity concept. Since the basic objective of Financial Accounting is the measure, business income (profit), business entity concept ensures that all the transactions entered into by parties closely associated like owners; employees, managers) are properly recorded and accounted for: It is lnly this way a business enterprise can be given separate entity. Now, having explained the concept/principle, the student must be made to aware of its implication in the process of preparing financial statement. For example, when capital is brought into business, the trader's capital account is opened, and his capital account is credited with the amount. Ofcourse the corresponding debit will be given to cash Account. Similarly, when the trader withdraws money/materials his drawings Account is debited and correspondingly, cash account or purchases account is credited. These mechanica accounting operations are explained by the business entity concept.

2. Monetary concept

The Accountant records only those transactions that can be expressed in money. Feelings and Frustrations in business, for example, are not reflected in financial statements, as they can not be reflected in monetary terms. Similarly, some assets, skills that cannot be expressed in monetary terms, are not reflected in Financial Statements. However, the advantage of expressing transactions in monetary terms is that money provides a common denomiattir by means of which heterogin-ous facts about business can be expressed in terms of numbers that can be added and subtracted. The implication of this principle is that while recording transactions, we would record only these transactions that can be expressed in monetary terms, and only financial transactions are encompassed by Financial Accounting. Sowal transactions ie., the transactions that take place between two individ-uals in a business, that can not be expressed in monetary terms, lie outside the purview of financial accounting.

3. Cost concept:

In general , cost means sacrifice or foregoing but there is no unique correct measure of cost that is applicable to all situations and permit for all purposes. However, in Financial Accounting, cost represents money

spent to acquire an asset. But the cost concept does not mean that the asset would be shown year after year for an indefinite period at the cost price. The assets recorded at cost price at the time of purchase, are systematically reduced by the process called depreciation. The cost concept also implies that if nothing is paid for acquiring an asset, then it would not be shown in the books of accounts. Thus the knowledge and skill built up as the business operates, the teamwork that grows within the organisation, a favourable location that becomes of increasing importance as time goes by a good reputation with customers-none of these appears as an asset in the accounts of the company. Similarly Financial Accounts do not reflect the loss of a key executive. But the real value of the company will change immediately and this will be reflected in the market price of the company's stock which reflects investors' appraisal of value. Moreover, cost concept tells clearly that only historical costs are recorded and all further operations are made upon these costs only. That's why assets are shown at historical costs and depreciation charges are calculated on historical costs only.

4. <u>Going concern concept:</u>

The Going concern concept assumes the continuity of the business for an indefinitely long period. This

concept though looks to be simple, has got ample bearing on the way assets are valued and depreciated, and shown in the Balance Sheet. For example, if we assume that the business unit would be wound up after one year, all assets would have to be exhibited at liquidation values ie., (the values at which assets can be liquidated and cash can be realised). So, the going concern concept explains why we adopt historical cost for exhibiting assets and calculating depreciation on assets.

5. Accounting period

As has been mentioned above, inorder to provide the management and other parties interested in the business with the results of the business and the status of investment, the Accountant breaks the flow of transactions for a period called the accounting period which may be one year consisting of 12 months or ½ year of quarter year. This problem would not have come up, if the Business is say for one clear year. All expenses and subtracted from revenue, and business income is found out. The accounting period concept has been implemented through a number of conventions or other principles like matching concept and the realisation concept. Infact, It is the accounting period, that provides the guidance for making a number of adjustments in preparing Financial Statements. For example expenses, revenue, are recognised only with the help of accounting period. Only expenses and Revenue

relevant for an accounting period should be considered for determing Business income in the profit and loss account. For example, some expenses are paid, say insurance for the next accounting period, they should not be considered for terming business income. A number of examples can be quoted by throw light upon the importance of accounting period.

6. Dual concept:

The ducal concept or double entry concept assumes that the debit and credit sides of every transation in the business are to be reflected in the books of accounts. For example, when loan is obtained, It is liability (credit). Thus the double entry concept is completed. Ultimately, the duality concept assumes that all assets must be equal to all liabilities (balance sheet should tally).

7. Matching concept:

Though the flow of transactions is continuous, its continuity is broken into several time segments called accounting periods, to determine its periodic result, profit. The matching concept tells that the stream of transactions 'relevant' for an accounting period is to be recognised and matched against the stream of revenue relevant for that accounting period, to ascertain whether the business has made some profit or loss.

8. Realisation concept:

The realisation concept guides the Accountant in

recognising revenue for an accounting period. Revenue is the monetary expression of the aggregate of products or services transfered by an interprete to its customers during a period of time. For purposes of Financial Accounting, revenue is usually considered as having been realised. When a sale has been consummated and the invoice prepared and recorded in the accounting records.

The problem is say, that a business unit has made sales during one accounting period 1975, however cash has been obtained in the following accounting period. Should we consider the sale to have been made in the first accounting period (1975) or in 1976. A per the realisation concept, sales are said to be made and revenue realised in the accounting period when sales are made regardless of whether cash realised.

1975	1976
Sales made Rs. 1,00,000	Cash of Rs. 1,00,000 realised.

Sales are said to be made and revenue is said to be realised in the accounting period 1975, and the same may be credit to 1975 Profit and Loss Account.

9. <u>Cost expiration concept:</u>

While the Accountant is guided by the Realisation concept in recognising Revenue for an accounting period, the cost expiration concept guides him in recognishing the costs relevant for the accounting period to match them

against Revenue in the profit and loss account. Costs are incurred for the purpose of earning revenue, and they are designed to the Revenue (deducted from the Revenue) to findout the result of a business unit's operations.

Expenditure may be broadly divided into clearly Revenue expenditure and capital expenditure. Revenue expenditure represent money spent in accounting goods and services which in turn to produce current accounting period's Revenue. They include, materials, wages, and salaries and a cost of other charges which are expired or used in the current accounting period only. Where as some money is always spent in acquirung goods and services which are likely to benefit the business in producing the current accounting periods revenue only but also several other accounting periods to come. For example money spent on a medicine say Rs.10,000. It is expected to service for 10 years. The amount of Rs.10,000 is spread on 10 accounting periods. In the first accounting period Rs.1000 is charged to profit and loss accounting under depreciation and the remaining Rs.9,000 is maintained as an asset in the Balance sheet. Now the part of the asset Rs.1000/- released to profit and loss account is revenue expenditure, and the remaining cost residue is shown as an asset. So these expenditutes that are expired are released into profit and loss account, are

also called expenses. A number of other exampler can also be given. The student should understand that in preparing profit and loss account, we take all expenses paid or to be paid, but must be relevant for the period, similarly all Revenue realised in cash or not, but must be relevant for the period. Thisiis what is called accrval accounting.

10. Concept of Materiality

In law there is a dectrine called 'minimis non curat lex' which means that the court will not consider trivial matters. Similarly, accounting ignores the record of such events which are so insignificant that the work of recording them is unjustified by their usefulness. Consider the case of a pencil purchased by a corporation. Strictly speaking, it is an asset and should be shown in the Balance sheet. Everytime when the asset (pencil) is used up the owner's equity (capital) is accordingly reduced. So the 'expired cost' of the asset (pencil) is to be ascertained and duly accounted for so that the records could correctly show the practional amount of the remaining asset. However, if this procedure is continued till the pencil is exhausted, the cost of computation and recording would be gigantic as compared to their usefulness. Noted, materials like stationary, pencil which do not call for elaborate accounting, are deemed to have been used up when they are issued. At this point, the Teacher should make

it clear that there is no objective criteria exists for separating a material item from a non-material one. The economic significance of an item is a relative concept than an absolute concept. Moreover, materiality is not restricted merely to amount. It also extends to information It is again relative in nature.

11. Concept of consistency

The concept of consistency requires that accounting procedures, and policies one adopted should be followed year after year indefinitely for a high degree of comparability of any concern's reported statements. At this stage, it is desirable to state to the student what is meant by an accounting policy. The accounting policies refer to the specific accounting principles already discussed and the mathods of applying these principles adopted by the interprete in the preparation and presentation of financial statements. The following are examples of the areas in which different accounting may be adopted by different enterpretes.

- Methods of depreciation
- Valuation of inventiries
- Referred Revenue expenditure etc.

For example, in valuation of inventory, an assets (working) cost or Market value whichever is lower is followed. But to ascertain cost, It is the accounting

policy of the business to adopt LIFO method, It should be continued to ensure consistency. Any change in the method, say switchover to FIFO, would distort earnings.

12. Concept of conservation

The concept of conservation is based upon the belief that an arrer of understatment is likely to be loss serious than that of an error of overstatement. Over valuation inflates reported resources as also income, and on the latter's distribution, business is adversely affected if the market later declines. The recorded value of resources then exceed their real worth. This practice, if persisted leads to insolvency and forced liquidation of the very business. Under valuation however does not threaten the very existence of the concern, although it has other ill-effects - concealment of resources, malpractices by management. The valuation of inventory at cost or market value, whichever is less is a faithful application of anticipate no profits but provide for all possible losses. The point can be highlighted further by giving some more examples. For examples, when there are lesses, they are closed into the debit side of profit and loss account. Which means, they are charged against current profits. Similarly if there are likelyhood of some lesses to arise in the future, provision would be made against current revenue. Say when reserve for Bad and doubtful debts are provided against current revenue, the accountant

is strictly guided by the concept of conservation. A number of other examples can also be quoted, and explained.

3.3 <u>Adopting Generally accepted financial Accounting Principles</u>

The Accountant, is preparing Financial Statements, puts in the following functional efforts:

1. Data collection (recording transactions, posting them into ledger, and taking a trial balance out of it and preparing supporting accounting information)

2. By applying the principle discussed above, the data collected is translated into financial statements.

Ofcourse, even while recording data alsi, some principles are followed. However, a great number of principles are necessarily to be followed at the second step. It is at this stage, the Accountant is given discretion in applying the principles, but he should ensure that he has applied them in such a way that the financial statements exhibit a true and false view. The Institute of chartered accountant of India has appointed a body called Accounting standards Board. Which has developed some standards. They are related to General Accounting Policies and valuation of inventory. If insists that if a business does not follow I) Accrual principle 2) Consistency principle, the business should report the same in the financial statement.

Similarly if it is not a going-concern. The same should be reported in the financial statements.

3.4 The problem of Generally Accepted Financial Accounting Principles

One problem with generally accepted principles concerned with the method of applying them specially with the choice in the hands of the Accountant. For instance, in valuing inventory, the accountant may ascertain the cost following one of several methods like FIFO, LIFO etc. Though viewed upon this it is felt that greater uniformity is desirable. It is the duty of the accountant to see that the financial facts about a business are presented in the fairest manner. This is the reason for the discretion given to the Accountant. For example, take the case of the depreciation of a machine. If in the openion of the accountant, the useful life of the machine is dependent upon the number of hours it is in operation, he will use mechine-Hour method of depreciation. But if it is a machine not affected by usage, he will probably use the straight line method.

3.5 Conclusion

A principle to be generally acceptable has to satisfy the following criteria - Relevancy, objectivity and Feasibility. Any accounting principle is relevant if it results in information useful for the parties interested in business. It is objective if it does not field

much scope for personal bias. It is feasible if it can be implemented.

Against the above criteria, some of the generally accepted accounting principles we have observed, have become obsolete, hence they are under severe attack. For example, in preparing financial statements, it is assumed that the monetary unit is stable which is not true in the real world. Similarly the cost is assumed to be the historical cost only. This concept has again become irrelevant. Therefore, the current problem with respect to generally accepted financial accounting principles, is not so much concerned with the discretion given to the Accountant, but with broad general principles.

3.6 Limitations of Financial statements

This Financial Statements prepared suffer from some limitations some of which have been dealt with above inaddition to the above, the Financial Statements are under attack in the present day socio-economic set on two points.

- They do not reflect the most important asset in an enterprise namely human assets.
- They do reflect only economic activities and do not reflect social activities of an enterprise.

As such, the Accountant is posed with the problem of rectifying the above criticisms levelled against Financial Accounting. To the first critisms, the Accountant is

developing human Asset Accounting. To the second criticism the Accountant is developing social Accounting. Accounting is undergoing metamorphosis A lot of change are in the offing.

4. INSTRUCTIONAL AIDS

1. A handout may be prepared detailing the Generally Accepted Financial Accounting Principles, and distributed at the end of the period.
2. 'Flow-charts' may be developed on the blackboard simultaneously whole explaining some concepts.
3. Problems calling for the interpretation and application of principles may be set and distributed to the students.
4. Blackboard and chalk should extensively be used whole explaining the principles.

5. METHODOLOGY

It is suggested that the Teacher may deliver a brief talk introducing the student to the topic, spelling out learning outcomes and then explaining the Generally Accepted Financial Accounting principles. It may be followed by posing questions to the student. At a later stage, the students may be given some statements excerpeted from the topic and encouraged to discuss. As an example, the students may be given the following statement and asked to discuss and the Teacher has to guide their discussions. Whenever, the students are deviating from

the point of focus, the Teacher has to steer them properly and bring them back to the track.

Example: "Minimis Non Curat Lex' - discuss.

At this stage the student may have developed knowledge, and understanding of generally accepted financial Accounting principles, and ready for interpretation and application. The Teacher then, may develop some problems that call for the interpretation and application of principles, and the students may be asked to solve them. Thus, the teacher is suggested the following methods of Teaching the unit:

1. Lecture Method (Stage One)
2. Question and answer method (Stage two)
3. Statement discussion method (Stage three)
4. Case method (Stage four)

6. Evaluation

The Teacher may evaluate the performance of the student by testing him his knowledge, understanding and Application through objective type questions. These objective type question may be:

1. Multiple choice questions
2. True and False questions
3. Matching type questions.

Some examples are given here.

1. Multiple choice question

Example: Realisation concept tells that sales are

said to be realised:

A) At the point of sales

B) At the point of realisation

C) At the point of accepting the order

2. True and False Question

Example:

The consistency principle explains that overstatement is always better than understatement.

True/False.

3. Matching type

Example: Match the following

1. identification of revenue	1. The Dual concept
2. identification of costs	2. going concern principle
3. valuation of inventory	3. Cost exporation concept
	4. Materiality Principle
	5. Conservation principle
	6. realisation concept

7. REFERENCES

1. John N Myer, Financial Statement Analysis, Prentice - Hall if India, 1972

2. C.T.Horngren, Cost-Accounting, prentice-Hall of India, 1976

3. Anthony R.N., Management Accounting: Texts and Cases, Richard D Irwin MC, Illinois, 3rd ed 1964.

4. E.L. Kohler, A Dictionary for Accountants, prentice-Hall Mc, Englewood cliffs, New Jersy, 1963

5. Elden S Hendriksen, Accounting Theory, 1970

6. C.C. Magee, K Financial Accounting and control, Ge-orge Allen and Urwin Ltd., 1968.

7. E.L. Kohler, Accounting for Management, Prentice-Hall Mc. N,J.1965

8. C. Aubruy Smith and Gim G. Ashburne, Financial and Administrative Accounting, Mc-Fraw-Hill Book comp. INC New York 1960.

9. H.G. Guthman, Financial Statement Anlysis, prentice Hall of India, New Delhi, 1976.

10. E.L. Kohler, On Developing International Accounting: Meanings, The International Journal of Accounting, Vol-I, No-I , 1965 P. 35-40

11. S.B. Chodhry, Management Accounting, Kalyani Publishers, New Delhi, 1978

12. Dr. S.K.R. Bhandari and H.S. Kulshresta, Essays in Accounting Sahitya Bhavan, Agra, 1964

13. M.W.E. Glautier and B. Underdown, Accounting Theory and practice, A pitman International Text.

14. A.C Littletion, The Continuing Importance of Basic Concepts, The International Journal of Accounting, Vol. I No. I P, 35-40

15. B.D. Agrawal, Financial Accounting Advanced, Ramprasad & Sons

16. M.C. Shukla & T.S. Grewal, Financial Accounting, Sultan chand and Son, New Delhi.

17. The Institute of chartered Accountants of India, ASI, Disclosure of Accounting powers, and AS2, valuation of inventories.

UNIT - 8

PRACTICE SETS IN ACCOUNTANCY

Accountancy has been introduced as one of the vocational courses in many States of India. It has been observed that the approach followed by the vocational teachers is more or less the same as followed by the teachers of academic stream. One of the major deficiencies of this approach of teaching accountancy is that students do not get a feel of what goes on in a real business situation. This is due to the fact that, while we teach them various principles and procedures of book-keeping, we do not familiarise them with actual job of an accounts clerk. His job in a business consists of recording business transactions in appropriate books, the basis for each transaction being some kind of an original business paper. Nobody gives to the accounts clerk a ready made list of transactions to be entered into the books. Transactions take place at various points and these are fed back to the book-keepers through a variety of business papers like receipts, vouchers, invoices, debit and credit notes, cheques, bills of exchange etc. The accounts clerk has to have the ability to analyse and interpret original business papers from the point of view of the accounting process. A practice set can go a long way to

meet this deficiency and make the teaching-learning of accountancy very exiting and realistic.

What is a Practice Set

. . set consists of original business papers relating to the transactions of a given business for a particular period of time. These papers are then arranged Chronologically. Students are required to examine each business paper carefully, explain its significance and record the transaction in the appropriate books. Thus practice sets provide an opportunity of learning as near to a practical situation as possible and at the same time it serves to synthesise the various instructional units studied in the text.

Prastice sets can be of varying length and complexing and can be given to the class at various stages. For example a short practice set may be given when the simple book-keeping cycle has been taught covering journalising, posting, balancing, trial balance and final accounts. Again a little more elaborate practice set may be given when the second book-keeping cycle, inclusive of subsidary books has been taught. A still more complex practice set may include bill transaction and may be given when the unit has been taught.

Using Practice Sets

When practice sets are used to integrate learning, the teacher is chiefly concerned with providing practice -- not testing. In such cases, the teacher may want to keep the entire class together by going over each transaction and each step of the work at the end of the fiscal period with the class doing each step. When the class is agreed on where a transaction is to be recorded and why, each student in the class makes the proper entry. The teacher will use the same plan when postings are made and in completing the work at the end of the fiscal period. In each case the teacher draws on previous learning by having the students make the decisions regarding every phase of each step of work in the practice set. The text is referred to often to clarify points.

The use of the practice set in this manner, the teacher is then ready to determine, through appropriate tests, whether the student has learned to analyze, record, and interpret the records and to perform the end-of-the-fiscal-period work.

Included among the many advantages of using practice sets in this manner are:

1. The teacher can easily keep the class together.
2. The slow learner does not get lost in the process.

3. The able learner can be seated near a slow learner to make certain he is following each step.
4. Every student is getting much needed practice in integrating what he learned in the separate treatment given in the text.
5. The test at the end of the practice set provides the teacher and the student with an objective diagnosis of learnings that need to be strengthened.
6. The test results provide the teacher with a basis for determining grades.

<u>Using Practice Sets by Teams</u> :

Another way in which the practice set can be used as a teaching and learning device is to divide the class into teams of three or four students. The teacher attempts to set up the teams so that each team has on it a very able student, a slow learner, and one or two average students. The most able student serves as team leader.

Each member of the team has his own practice set. The leader reads the first transaction, and the team members discuss where it is to be recorded and why. Each member then records the transaction. The leader makes certain that everyone has made the entry correctly and that each one knows the WHY of the entry.

When it comes time to post transactions, the leader again makes certain that each member of his team understands the reason for each step of the posting.

At the end of the fiscal period, the team words together on each step of work. Members of the team discuss each step and compare their results with each other.

When the set is completed, the teacher then administers a test on it. Each student does the test on his own -- it is not a team test as such. The scores of each member of each team are averaged to get them score. The fact that students like to see their team score above others causes each team member to put pressure on the other members to understand the HOW as well as the WHY of recording every transaction and to understand every step in the bookkeeping process.

The individual scores on the test are used to determine the grade for each studen .

This plan has many advantages among which are:

Each able student becomes an extra arm of the teacher in that he is responsible for seeing to it that every member of his team understand every step of the work. Thus the able student is getting an important learning experience because it is well known that if one teaches something to someone else, he strengthens his own learning.

2. The able student is also getting an important experience in learning to work with others and to supervise the work of others. This is important because the able student is most likely to be in charge of others on the job.

3. Able students may, through this experience, become interested in teaching.

4. Students like teamwork, and they take pride in seeing that the team of which they are a member scores high not only in terms of the team score but also in keeping up with other teams in terms of work completed. The team members put pressure on each other to be regular in attendance because a team cannot report transactions completed unless every team member has completed each step.

5. The slow learner does not get left by the wayside causing the teacher finally either to provide him with the answers or simply let him fail.

6. The fact that the teams are competing in terms of work completed causes all students to realize that speed is an important part of the work of the bookkeeper.

7. Many times students can teach each other far more effectively than can a teacher who is responsible for the entire class.

8. This kind of class organization teaches students to work together which they will have to do on most jobs.

Using Practice Sets on an Individual Basis :

An additional way in which the practice set can be used as a teaching and learning device is to allow each student to proceed at his own pace. In this kind of situation the student may work on the set both in and out of class. He may secure any assistance he needs from other students or at home. The objective being to learn by practicing. The teaching is not concerned with keeping the class together.

When the student completes his set, he is given a test on it similar to the tests discussed previously.

The problem of what to do with the student who completes his work well ahead of the rest of the class is always a difficult one. Some teachers encourage the student to work additional practice sets that are somewhat more difficult and that require additional learnings. Others use the fast learners as auditors of problems and practice sets as they are completed by other students. This use of the able student is very desirable because the experience of auditing the work of others is highly practical and it provides the student with addiitonal experience and understanding.

Others use these able students as coaches of slower students. This is also a valuable experience in that these able students are getting a taste for teaching and are learning how to deal with those who are not as rapid in learning as they are.

The advantages of having each student proceed at his own pace are also many including the following:

1. The able student does not feel that he is being held back by being compelled to go at the rate of the slowest student in the class.

2. Each student is put on his own to sink or swim according to his own efforts and abilities. This is what he will find when he takes a job, and he might as well learn to assume this responsibility while in school.

3. The lazy, indifferent student is not carried along by the hard-working, enthusiastic student. If the lazy, indifferent student is carried along in school, he may expect the same treatment on the job. It is best to learn the facts of life while in school rather than come to a sad awakening on the job.

4. The able student may be challenged by being assigned practice sets such as those used in beginning accounting classes in college.

ACCOUNTANCY PRACTICE SET-I -- CONSIGNMENT

Roy & Co. of Delhi sends on consignment Bi-cycles to his agent Krishna Kumar & Co., Station Road, Mysore.

Enclosed herewith are the original papers relating to his business transactions for the quarter 1st January 1981 to 31st March, 1981.

Let us analyse the transactions on the basis of these papers and process the entire information through the various stages of the book keeping cycles, we shall enter the transactions in the journel, post them into the ledger both in the consigner's books and consignee's book and can find out the net profit or loss sustained by the consignor.

****

Roy & Co
D-16, Cannaught Circus,
Delhi - 1

Dated: 28th December, 1981

Ref. No. C/15

To

M/s Krishna Kumar & Co.
Station Road, Mysore.

Dear Sir,

We are very much pleased to appoint you as our agent in Mysore city for selling ours cycle in that region after receiving your letter No.87 dated 24th December, 1980.

As per contract you are supposed to send us one-third of the price of the goods by Bank Draft after receiving the goods. Balance will be settled quarterly. You will get @5% commission on gross sale proceeds and 1% deleredene commission. Other incidential charges will be borne by us.

After receiving your confirmation we are going to send the consignment to you.

Yours faithfully,

KRISHNA KUMAR & CO
Station Road, Mysore

Ref. No.94 Dated: 30th December, 1980

Dear Sir,

We are in receipt of your letter No. C/15, dated 28th December, 1980 and very much glad to learn that you have appointed our firm as your consignee for the State of Karnataka.

We agree at your proposal regarding rate of commission. Delcredere and advance payment etc.

Please send us goods immediately at least 1000 by-cycles (22") green colour and assure you we shall be able to sell these quantities within 31st March, 1981.

Yours faithfully,

sd/-
(K.KUMAR)
For Krishna Kumar & Co.

- -

PROFORMA INVOICE

RO & CO.
D-16, Connaught Circus,
Delhi-1

No.52 Dated: 1st Jan., 1981

To

M/s Krishna Kumar & Co.,
Station Road, Mysore

Sl.No.	Description of the Goods	Details	Amount
1.	1000, 22" Bi-cycles green colour @ Rs.300.00 each	3,00,000	
	Freight paid on consignment	16,000	
	Insurance effected on the consignment	4,000	
	Total:		3,20,000

(Rupees three lakhs twenty thousand only)

E. &.O.E.

sd/-
(A.K.ROY)
For Roy & Co.

KRISHNA KUMAR & CO
Station Road, Mysore

Ref.No.105 Dated: 10th January, 1981

Dear Sir,

We acknowledge the receipt of your consignment forwarded by you on 1st January, 1981 via proforma Invoice No.52 but owing to lorry accident in Bhopal, 100 Bicycles totally destroyed and we have received only 900 Bicycles. As per our contract we are sending herewith by way of Bank Draft No.25/81 payable at S.B.I. Parliament Street, Delhi for Rs.90,000/- (i.e. 33 1/3% of the cost price of the Cycle) sending by way of advance.

We shall send account sales in due course.

Yours faithfully,

STATE BANK OF INDIA
Mysore Branch

B.Draft No.25/81 Dated 10th January, 1981

Pay to Roy & Co. or order the sum of Rupees Ninety thousand only.

Rs.90,000/-

sd/-
(D.Dibnath)
Accountant

sd/-
(R.Nagaur)
Manager

To
Parliament Street Br.
Delhi

To
The Branch Manager
National Insurance Co.,
15, Barkhamba Road, Delhi-1

Ref. No. C/39

Ref: Insurance claim for Rs.32,000/- against
Pol. No.51239

Dear Sir,

On 1st January, 1981 we sent by lorry 1000 Bi-cycles to our agent Krishna Kumar & Co. Mysore, but on its way in Bhopal the lorry No.DLF-5125 of Chacha & Co. (Delhi) met with a Road accident and 100 cycles were completely destroyed.

It was under Katwali Police Station, Bhopal. We lodge F.I.R. to the police station and the relevent papers given by them to us will testify the truth.

After sending your surveyer at the place of occurance please pay claim to us at an early date.

Yours faithfully,

sd/-
(A.K.ROY)
For Roy & Co.

Dated: 11th January, 1981
Encl: 1 (copy of Police Report)

NATIONAL INSURANCE COMPANY

Phone: 672875

15, Barkhamba Road,
Delhi-1,
Dated: 27th January, 1981

To
M/s Roy & Co
D-16, Cannaught Place,
New Delhi - 1

Ref: Your letter No.C-39 dated 11th January
for Insurance claim of Rs.32,000/-

Dear Sir,

We have enquired about the matter of road accident cited by you and pleased to admit a claim of Rs.25,600/- (Rupees twenty-five thousand six hundred only) as the policy issued under average clause of 80% loss to be covered and an account payee cheque is enclosed herewith.

Encl: Cheuqe No.6585 on Bank of Baroda, Cannaught Circus Branch, New Delhi-1

Yours faithfully,

sd/-
(D.DESAI)
Branch Manager
National Insurance Company

- -

BANK OF BARODA
Carnaught Circus Branch

Cheque No.C 6586 Dt. 25-1-1981

Pay to Roy and Co., or do order for a sum of rupees Twentyfive thousand six hundred only.

Rs.25,600/-

R.Saha
Accountant

D.DESAI
Manager

ACCOUNT SALES

Account sales of 800 cycles received from Roy & Co. Connaught Circus, and sold on their behalf by M/s Krishna Kumar & Co., Station Road, Mysore.

800 Bi_Cycle were sold @ Rs.440/- each :		3,52,000
Less, Charges:		
Octroi & Cooly Charges for unloading	28,800	
Commission @ 5%	17,600	
Declare commission @ 1%	3,520	49,920
		3,02,080
Less amount already sent by Bank Draft on 10.1.81		90,000
		2,12,080

E. & O.E.
Mysore

K.KUMAR
Signature

31st March, 1981

Encl: Bank Draft No.53/81 on S.B.I.
Parliament St., New Delhi.

STATE BAN OF INDIA
Mysore Branch

B.Draft No. 53/81 Dated: 31.3.1981.

Pay to Roy and Company or order the sum of

Rupees two lakhs twenve thousand and rupees eighty only.

Rs.2,12,080

Sig. D.DEENATH
Accountant

Sig. R. NAYER,
Manager

To
Parliament Street Branch,
New Delhi -1

- -

Answer: -

i) Profit on Consignment : Rs.49,280/-

ii) Abnormal Loss : Rs. 6,400/-

iii) Amount due from Consignee : Rs.49,230/-

ACCOUNTANCY PRACTICE SET No. 2 -- NON-TRADING CONCERNS

GOLDEN JUBILEE CLUB, Bangalore incurred the following expenses and earned an income for the year ended 31st December 1980. As per the documents enclosed herewith let us analyse the transactions on the basis of these papers and process the entire information through the various stages of the book-keeping cycle. We shall enter the transactions in the Journal, post them into the ledger, balance the accounts and prepare the FINAL ACCOUNTS.

....

GOLDEN JUBILEE CLUB

Balance Sheet as on 31st December 1979

CAPITAL & LIABILITIES			PROPERTIES & ASSESTS	
Capital Fund		30,250	Club House & Grounds	20,000
Income & Expenditure A/c		2,965	Investment at cost	9,620
Outstanding Expenses:			Furniture and Fixtures	3,200
Upkeep of Ground	250			
Printing & Stat	100	350	Bank	745
Total:		33,565	Total:	33,565

NANDI PRINTERS & PUBLISHERS

No.1978

No.479, 18th Main
Jayanagar, II Block,
Bangalore - 11
Dated: February 1)th, 1980

M/s Golden Jubilee Club,
V.V.Puram, Bangalore-4

Particulars		Amount
Balance Due	..	100.00
Printing Charges	..	445.00
	Total:	545.00
	Less received	465.00
	Balance Due	80.00

Rupees four hundred and
sixty five only

Received by cheque No.45, dated 6.2.1980
on Canara Bank, Bangalore.

Verif'ed by :
sd/-
Secretary

Passed 'or Payment
sd/-
Accountant

sd/-
For Nandi Printers.

****

CANARA BANK

V.V.Puram Branch, Bangalore-4

CREDIT ADVICE SLIP

S.B.Account No.525 Dated: 31st Dec., 1980

To

M/s Golden Jubilee Club,
Bangalore.

An amount of Rs.420.00 (Rupees Four Hundred and Twenty only) is credited to your account received from A.B.C. Company Limited, Madras, on account of interest on investments.

Sd/-
Manager

Sd/-
Accountant

****

AGREEMENT

This agreement is entered this day the 10th June 1979, at Bangalore, between GOLDEN JUBILEE CLUB, BANGALORE (here in/after called the First Party) and NEW DRAMA HALL, BANGALORE (here in after called the Second Party) that the Drama Hall and ground which belongs to the second party is leased out to the first party on a rent of rupees five per day for performance.

Bangalore,
Dated: 10th June 1979

1. Sd/-
Manager,
Golden Jubilee Club, Bangalore

2. Sd/-
Manager
New Drama Hall, Bangalore.

GOLDEN JUBILEE CLUB

No.111

V.V.Puram, K.R.Road,
Bangalore,
Dated: 31st Oct. 1980

CASH RECEIPT

Received with thanks Rs.2590.00 (Rupees two thousand five hundred and ninety only) on account of concerts conducted on 25th September, 1980

Sd/-
ACCOUNTANT

****

GOLDEN JUBILEE CLUB
V.V.Puram, Bangalore-4

No.3492 Date: 10.4.80

RECEIVED with Thanks from Sriyuths Sundry Members as per Entrance Fee Register a sum of Rupees two hundred and sixty only, towards Entrance Fe

Rs.260/-

Sd/-
Accountant

GOLDEN JUBILEE CLUB
V.V.Puram, Bangalore -4

No.3492 Date : 10.4.1980

RECEIVED With Thanks from Sundry Members as per Entrance Fee Register a sum of Rupees Two Hundred and sixty only towards Entrance Fee.

Rs.260/-

Sd/-
ACCOUNTANT

****

GOLDEN JUBILEE CLUB
V.V.Puram, Bangalore-4

ABSTRACT FROM THE SUBSCRIPTION REGISTER FOR THE YEAR 1980

Sl.No.	Name of the Subscribers	Amount
1.	Vide Receipt Book No. 132	2000.00
2.	Vide Receipt Book No. 133	1500.00
3.	Vide Receipt Book No. 134	1000.00
4.	Vide Receipt Book No. 143	2000.00
5.	Vide Receipt Book No. 144	300.00
		6800.00

Total Amount received during the year is Rupees Six thousand eight hundred only.

Sd/- President	Sd/- Accountant	Sd/- Secretary

****

PASS BOOK

Canara Bank, V.V.Puram, Bangalore
Name: M/s Golden Jubilee Club, Bangalore.

S.B.Account No.525 Ledger Folio: 840

Date	Particulars	Dr.	Cr.	Balance	Initials
1980					
Jan 1st	By Balance B/F	-	-	745.00	
10th	To Postage 043	95.00		650.00	
25th	By Subscription	.	6800.00	7450.00	
31st	To Salary & Wages 044	390.00	-	7060.00	
Feb. 6th	To Nandi Printers 045	465.00	-	6595.00	
28th	To Salary & Wages 046	390.00	-	6205.00	
Mar.31st	To Salary & Wages 047	390.00	-	5815.00	
Apr.10th	By Cash	-	260.00	6075.00	
Apr.30th	To Salary & Wages 048	390.00	-	5685.00	
May 31st	To Salary & Wages 049	390.00	-		
Jun 30th	To Salary & Wages 050	390.00			
July31st	To Salary & Wages 101	390.00			
Aug.31st	To Salary & Wages 102	390.00			
	To Ravi 103	106.00			
Sep.30th	To Salary & Wages 104	390.00			
Oct.31st	To Salary & Wages 105	390.00			
31st	By Cash(concert)		2590.00	5830.00	
Nov.15th	To Manoj 106	4750.00			
30th	To Salary & Wages 107	390.00			
Dec.31st	By Interest on investment		420.00		

GOLDEN JUBILEE CLUB (R)
V.V.Puram, Bangalore-4

Wages and Salary Sheet for the Month of December 1980

Sl.No.	Name of the Employee	Designation	Basic	DA	HRA	CCA	Total
1.	K. Ramanujam	Manager	100	30	12	8	150
2.	N.Raghu	Accountant.	90	30	12	8	140
3.	S.Suresh	Clerk-cum-Typist	60	25	8	7	100
							390

Total Rupees Three Hundred Ninety only

Prepared by......   Accountant......   Manager .....

* *

EXTRACT FROM ACQUITANCE ROLL

Golden Jubilee Club(Regd.), V.V.Puram, Bangalore-4

Wages paid for the month of	January	1980	Rs.390.00
- do -	February	1980	Rs.390.00
- do -	March	1980	Rs.390.00
- do -	April	1980	Rs.390.00
- do -	May	1980	Rs.390.00
- do -	June	1980	Rs.390.00
- do -	July	1980	Rs.390.00
- do -	August	1980	Rs.390.00
- do -	Sept.	1980	Rs.390.00
- do -	October	1980	Rs.390.00
- do -	Nov.	1980	Rs.390.00
- do -	Dec.	1980	Rs.390.00

Total: Rupees Four thousand six hundred and Eighty only.   Rs.4680.00

Sd/-
Accountant

Sd/-
Manager

* *

GOLDEN JUBILEE CLUB (REGD)
V.V.Puram, Bangalore-4

Abstract from the Ground Maintenance Register, showing the amount spent on the maintenance of ground for the Year 1980

Amount spent in the Month of	January	1980	Rs.625.00
(includes Rs.250/- for the year 1979)			
Amount spent in the Month of	February	1980	Rs.375.00
- do -	March	1980	Rs.375.00
- do -	April	1980	Rs.375.00
- do -	May	1980	Rs.375.00
- do -	June	1980	Rs.375.00
- do -	July	1980	Rs.375.00
- do -	August	1980	Rs.375.00
- do -	Sept.	1980	Rs.375.00
- do -	Oct.	1980	Rs.375.00
- do -	Nov.	1980	Rs.375.00
- do -	Dec.	1980	Rs.375.00
	Total:		Rs.4750.00

(Rupees Four thousand seven hundred and fifty only)

Sd/-
Accountant

sd/-
Manager

Cheque No. 106 Dated 15.11.80

* *

GOLDEN JUBILEE CLUB (REGD)
V.V.Puram, Bangalore-4

Abstract from the Postage Register showing the monthlywise expenditure on postage.

For the month of	January	1980	Rs.00.00
-do-	Feb.	1980	Rs.00.00
-do-	March	1980	Rs.17.00
-do-	April	1980	Rs. 3.00
-do-	May	1980	Rs.15.00
-do-	June	1980	Rs. 7.00
-do-	July	1980	Rs. 6.00
-do-	August	1980	Rs.12.00
-do-	Sept.	1980	Rs.10.00
-do-	Oct.	1980	Rs.11.00
-do-	Nov.	1980	Rs. 4.00
-do-	Dec.	1980	Rs. 5.00
			Rs.95.00

(Total amount spent on Postage : Rupees Ninety Five only)

Sd/-
Accountant

sd/-
Manager

F16042
28186

THE KHUCHALAMBA KALYAN MAHAL

No.399, II Block,
Jayanagar, Bangalore-11
Date: 31st Dec. 1980

To
The Secretary,
M/s Golden Jubilee Club,
Bangalore.

Sir,

We acknowledge the receipt of your Bill No.28 for concert dated 10th December 1980, for Rs.105 and regret to inform you that due to financial stringency at present we are not in a position to settle the account, but assure you that this payment will be made during January 1981.

Sorry for the inconvenience caused to you,

Thanking you,

Yours faithfully,

sd/-

SECRETARY

* *

GOLDEN JUBILEE CLUB
V.V.Puram, Bangalore-4

<u>Copy of Minutes</u>

As per the Resolution No.223 dated 15th January 1976, the following bye-laws are passed in the presence of all the members:

1. Entrance Fees are to be fully capitalised.
2. To charge 10% depreciation on furniture on the written down value method.

Sd/-
PRESIDENT
For Golden Jubilee Club